जयप्रकाश नारायण



सम्पूर्ण क्रांति



सम्पूर्ण क्रान्ति

•

जयप्रकाश नारायण

•

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक : सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी-१
मुद्रक : शिवलाल प्रिन्टर्स,
नायक बाजार, वाराणसी-१
संस्करण : दूसरा
प्रतियाँ : १०,०००; जनवरी, १९७५

मूल्य
दो रुपये

Title : SAMPOORNA KRANTI
Author : Jayaprakash Narayan
Subject : Revolution
SARVA-SEVA-SANGH-PRAKASHAN
RAJGHAT, VARANASI-1

प्रकाशकीय

श्रद्धेय जयप्रकाशजी के १९७४ के भाषण एवं वक्तव्यों में सम्पूर्ण क्रान्ति के बारे में विचार यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। प्रमुख अंगों में वर्गीकरण कर उन्हें इस पुस्तिका में रखने का प्रयत्न किया गया है। एक-दो स्थानों पर दो-तीन साल पूर्व के भाषणों से भी विचार-कण लिये गये हैं। भाषणों में कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी हुई है। विषय समझने के लिए उसे कहीं-कहीं कायम रखना पड़ा है। उनकी संभाषणात्मक शैली इस पुस्तिका में कायम रखी गयी है। आशा है, यह पुस्तिका पाठकों को पसंद आयेगी और उससे सम्पूर्ण क्रान्ति को समझने में एवं उसे चरितार्थ करने में मदद होगी।

"सच्चा स्वराज्य मुट्ठीभर लोगों द्वारा सत्ता हासिल करने से नहीं, बल्कि सत्ता का गलत इस्तेमाल होने पर जनता द्वारा उसका प्रतिकार करने की ताकत हासिल करने से आयेगा।"

× × ×

"स्वराज्य का अर्थ है सरकारी नियन्त्रण से मुक्त होने के लिए लगातार प्रयत्न करना—फिर वह नियन्त्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी सरकार का।"

—गांधीजी

अनुक्रम

●



१. भारत की आज की स्थिति

आज लहरों में निमंत्रण, तीर पर कैसे रुकूँ मैं ?
आज लहरों में निमंत्रण.........................

नदी की लहरें बुलावा दे रही हैं, तब तीर पर कैसे रुका जा सकता है ? वास्तव में रुकना नहीं चाहता, समाज में उठ रही इन तरंगों में कूदना चाहता हूँ।

मैं आज फिर से सन् '४२ की स्थिति देख रहा हूँ। इतिहास दोहराता भी है, नहीं भी दोहराता। आज की परिस्थिति सन् '४२ की परिस्थिति से एक माने में भिन्न है यह सही है, लेकिन परिस्थिति उतनी ही क्रांतिकारी है। कन्याकुमारी से कश्मीर तक जो एक क्रांतिकारी स्थिति पैदा हो रही है, उस पर क्या प्रधानमंत्री, क्या राष्ट्रपति, कोई भी शासन काबू नहीं कर पायेगा।

चीजें खिसक रही हैं और बहुत तेजी से बागडोर उन लोगों के हाथों से निकलती जा रही है। ऐसी परिस्थिति में हम लोग आमतौर पर जिस ढंग से सोचते हैं उससे भिन्न ढंग से सोचना चाहिए। जो परिस्थिति कठिन मालूम देती थी, जिसके लिए वातावरण बना नहीं था, वह परिस्थिति आज तैयार है। लोग आज आपकी बात सुनने को तैयार हैं, आज आपकी बात उनको यूटोपियन नहीं लगती। जनता के इस बदले हुए रुख को आपको पहचानना होगा।

जनता कराह रही है

आज सत्ताइस-अट्ठाइस वर्षों के बाद का जो स्वराज्य है, उसमें जनता कराह रही है। भूख है, महँगाई है, भ्रष्टाचार है, कोई काम नहीं जनता का निकलता है बगैर रिश्वत दिये। सरकारी दफ्तरों में, बैंकों में, हर जगह, टिकट लेना है, उसमें, जहाँ भी हो, रिश्वत के बगैर काम नहीं जनता का होता। हर प्रकार के अन्याय के नीचे जनता दब रही है। शिक्षा-संस्थाएँ भ्रष्ट हो रही हैं। हजारों नौजवानों का भविष्य अँधेरे में पड़ा हुआ है। जीवन उनका नष्ट हो रहा है, इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है—गुलामी की शिक्षा, कलम घिसने की शिक्षा। शिक्षा पाकर दर-दर ठोकरें खाना नौकरी के लिए। नौकरियाँ मिलती नहीं। दिन-पर-दिन बेरोजगारी बढ़ती जाती है। गरीब की बेरोजगारी बढ़ती जाती है। 'गरीबी हटाओ' के नारे जरूर लगते हैं, लेकिन गरीबी बढ़ी है पिछले वर्षों में। भूमिहीनता मिटाने के लिए सीलिंग के कानून, दूसरे कानून बने हैं, लेकिन आज पहले के मुकाबले में ज्यादा भूमिहीन हैं। जमीनें छिन गयी हैं, छोटे-छोटे गरीब किसानों की। तो मित्रो ! आज की स्थिति यह है।

भारत में ८२ प्रतिशत लोग गाँव में रहते हैं, १८ प्रतिशत लोग शहर में रहते हैं। गाँवों में समाज वर्गों में विभक्त है। जो

लोग भूमि-मालिक हैं, उन लोगों के पास जमीन के अलावा व्यापार भी है और नौकरी भी है। दूसरी ओर भूमिहीन मजदूर हैं। उनके पास न भूमि है, व्यापार, नौकरी कुछ भी नहीं है। उन लोगों को फायदा पहुँचाने के लिए भूमि-सुधार के कई कानून बने, लेकिन सारे के सारे निष्फल रहे। उससे कुछ नहीं बना। यह सद्भाग्य है कि हिंसा अब तक नहीं हुई। 'गाँवों का स्वरूप क्या हो—' यही है भारत के नव-निर्माण की मुख्य समस्या। वहाँ शोषक-शोषित और धनिक-गरीब का भेद पैदा हो चुका है। इन भेदों को केवल स्थूल रूप से हटाना ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समता कैसे स्थापित हो, यही मुख्य समस्या है।

यह कैसा समाजवाद ?

भारत जैसे कृषिप्रधान देश में समाजवाद का क्या स्वरूप रहेगा और वह किस प्रकार लाया जायगा ? किसी समाजवादी या साम्यवादी के पास उसका नक्शा है ? कुल मिलाकर समाजवाद के नाम पर देश के अर्थतंत्र को ही खत्म किया जा रहा है और जो गरीबों के प्रश्न हैं उन्हें हल नहीं किया गया। न एक्सप्लाईटेशन (शोषण) खत्म हुआ, न नाबराबरी (असमानता) खत्म हुई। न गरीबी खत्म हुई, न महँगाई। ये सब बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं। मैं इसे नकली या भ्रष्ट समाजवाद कहता हूँ। सरकार जो भी धंधा अपने हाथों में लेती है उसमें नफा बन्द हो जाता है। अगर पहले होता भी होगा तो अब बहुत कम है। निजी क्षेत्र के इन्तजाम से तो अच्छा नमूना समाजवाद को पेश करना चाहिए और जो नफा हो उसका मुनासिब बँटवारा हो। ये ही न कहते हैं कि निजी क्षेत्र में मुनाफे का बड़ा हिस्सा थोड़े लोगों के हाथों में चला जाता है, मजदूरों को नहीं मिलता ? लेकिन यहाँ तो मुनाफा होता ही नहीं, बँटवारे का सवाल ही पैदा नहीं होता।

हो भी कैसे, जब कि बड़े-बड़े अफसर हैं, बंगले हैं, रेलवे अफसरों के बड़े-बड़े सैलून हैं!

नतीजा यह हुआ है कि आज कुछ लोगों को बेतहाशा मुनाफा हो रहा है। आरम्भ से अन्त तक यह योजना दोषपूर्ण है। मेरी समझ में नहीं आता कि सारा देश एक है, कहीं कुछ पैदा होता है, कहीं कुछ पैदा होता है, तो उसके आवागमन में ये सारी रुकावटें क्यों? या तो पूर्णरूपेण समाजवाद हो या पूर्णरूप से मुक्त व्यापार हो। लेकिन यहाँ तो दोनों की अशुद्धियों की मिलावट है, जिसका यह परिणाम है। इन कामों के कारण समाजवाद आज जितना बदनाम हुआ है उतना तो कोई जान-बूझकर योजना-पूर्वक बदनाम करने की कोशिश करता तो भी समाजवाद इतना बदनाम न होता।

आज समाजवाद नहीं है, इस देश में तो नहीं है। सिर्फ सरकार अपने हाथों में उद्योग, रेलवे आदि को लेती चली जाय और इससे समाजवाद आ जाय, तब तो बड़ा आसान है! सरकार जो भी कदम उठाती है, समाजवाद के नाम पर ही उठाती है। लेकिन नतीजा उल्टा होता है। जनता के ऊपर उल्टा ही असर पड़ता है। अभी कार्यकर्ताओं के महँगाई भत्ते के सिलसिले में वेतन से रकम काट लेने की पॉलिसी अपनायी गयी। इससे महँगाई घटी नहीं, बढ़ती ही जा रही है। यह सोशलिज्म नहीं, ब्युरोक्रेसी (अफसरशाही) है, एक तरह से अफसरों का राज है।

राष्ट्रीयकरण से क्या होगा?

आज हमारे यहाँ की मुख्य समस्या है राष्ट्रीयकरण। हमारे यहाँ तो राष्ट्रीयकरण में पूँजीवाद और पब्लिक सेक्टर दोनों की बुराइयाँ घुसी हुई हैं। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि बापू का ट्रस्टीशिप का विचार पूँजीवाद से आगे जाता है। इतना ही नहीं,

समाजवाद और साम्यवाद से भी अधिक प्रगतिशील है। साम्यवादी देशों में भी वितरण, उत्पादन, दाम, कार्य-प्रेरणा आदि समस्याएँ हैं। वितरण में और अतिरिक्त मूल्य में किसका कितना हिस्सा हो, यह समस्या अब तक समाजवाद या साम्यवाद हल नहीं कर पाया। लोकतांत्रिक समाजवादी देश स्वीडन और नॉर्वे उस समस्या का हल खोज रहे हैं। जर्मनी में भी उसकी खोज चल रही है।

एक बहुत बड़ा गंभीर प्रश्न है कि जितने भी पब्लिक सेक्टर के उद्योग हैं वे सारे ट्रेड यूनियन के कब्जे में हैं। यानी पब्लिक सेक्टर में जितना झगड़ा है उतना प्राइवेट सेक्टर में भी नहीं है। राउरकेला में ६ यूनियनें हैं और दुर्गापुर में ७-८ यूनियनें हैं। तो केवल मात्र राष्ट्रीयकरण कर लेने से क्या हुआ? जब तक काम करनेवालों के साथ बैठकर एक सर्वसम्मत या सर्वानुमति से काम का तरीका नहीं निकालते और काम करनेवालों को काम में अपनापन महसूस नहीं होता, तब तक राष्ट्रीयकरण हो गया कहने से क्या मतलब है? इस प्रकार कोई समाजवाद नहीं आ सकता है। उसमें भ्रष्टाचार ने आकर तो सारे तंत्र को सड़ा दिया है। बनायी गयी अच्छी-से-अच्छी नीतियों को भी भ्रष्ट कर दिया। इस प्रकार राष्ट्रीयकरण का विनायक बनने के बजाय वानर बन गया। केवल 'राष्ट्रीयकरण-राष्ट्रीयकरण' नारा लगाने से क्या होगा? गेहूँ का थोक व्यापार हाथ में लिया था, फिर सब अनाज का व्यापार भी हाथ में लेने की बात कही जा रही थी। लेकिन कोई सोचनेवाला नहीं है कि यह सब उद्योग और व्यापार हाथ में लेने के बाद औद्योगिक और व्यापारिक डिसिप्लिन—अनुशासन—कैसे बना रहेगा?

देखिये, बिहार में कितना लोहा और कोयला है। लेकिन जब से राष्ट्रीयकरण—नेशनलाइजेशन—हुआ है, घर में जलाने के लिए

भी कोयला नहीं मिलता। दाम भी बेतहाशा बढ़ गये। ऐसी परिस्थिति में गरीब बेचारा क्या करेगा? समाजवाद से लाभ होना चाहिए, लेकिन किसको होता है? राजनीतिक लोगों को और अफसरों को ही होता है। सन् १९२२-२३ में रूस में एक विशेष परिस्थिति पैदा हो गयी थी। उन लोगों का अर्थतंत्र टूट रहा था। लेनिन को लगा कि इस प्रकार तो हमारी क्रान्ति ही खत्म हो जायगी। इसलिए उन्होंने अपनी आर्थिक नीति को रिवर्स-गियर––दो कदम पीछे हटाया। एक नयी अर्थनीति को अपनाया, जिससे उत्पादन की, व्यापार की नयी धाराएँ खुल सकें, फिर से कुछ रक्त का संचार हो और अर्थतंत्र कुछ स्वस्थ हो। ऐसा साहस-पूर्ण कदम उन्होंने उठाया था।

गांधी-विचार की बात लोग नहीं सुनते। लेकिन उसकी तरफ ठीक से ध्यान दिया जाय तो हमारे कई संकट टल सकते हैं। गेहूँ का व्यापार सरकार ने अपने हाथों में लिया, तब मैंने सरकार को आगाह किया था और इंदिराजी को पत्र लिखकर इस पर फिर से विचार करने के लिए कहा था। जनता के हित की बात हो तो कोई भी मनुष्य राष्ट्रीयकरण के खिलाफ नहीं जा सकता। लेकिन जो योजना बनायी गयी वह अपने में गलत थी, जो नीति बनायी गयी थी, वह भी गलत थी। खैर। उस पर अमल करने में ईमानदारी बरती गयी होती तो भी जनता को इतनी तकलीफ न होती। दिल्ली से लेकर नीचे तक सारे देश में भ्रष्टाचार फैला हुआ है। ऐसे भ्रष्ट प्रशासन के द्वारा राष्ट्रीयकरण पर अमल कैसे हो सकेगा? आज तो गजब का गठबन्धन हो गया है। बेईमान राज-नैतिक नेता, बेईमान अफसर और बेईमान व्यापारी, ये सब मिल गये हैं। इस हालत में कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती।

जन-असंतोष का वड़वानल

मेरे चिन्तन में एक बात यह भी है कि आज देश की परि-

स्थिति दिन-पर-दिन बिगड़ती जा रही है। आश्चर्य होता है कि लोग यह कैसे सहन कर रहे हैं, कैसे लोग अपना पेट भर रहे हैं। गरीब को तो छोड़ ही दीजिये, मध्यम वर्ग के लोग, औद्योगिक मजदूर—जो और मजदूरों से थोड़ा खुशहाल है, कैसे गुजारा करता है ? ये कॉलेज के शिक्षक लोग अपने परिवार को कैसे पालते हैं ? प्राइमरी स्कूल के लोग कैसे चलाते हैं अपना परिवार, धंधा कैसे करते हैं आज की महँगाई में। अब यह परिस्थिति रहेगी तो जनता चुप रहेगी ? ये नक्सलपंथी हों या न हों, दूसरे हिंसावादी हों या न हों, जनता के दिलों में जो असंतोष की, जो विद्रोह की भावना है, जो रोष है, क्रोध है, वह फूटेगा। इसी प्रकार से, छिट-पुट हिंसा यहाँ-वहाँ होती रहेगी तो नतीजा होगा कि लोकतंत्र का दरवाजा बन्द हो जायगा और लोकतन्त्र के बदले तानाशाही कायम हो जायगी।

अब इस लोकतन्त्र के दायरे में जो कॉन्स्टीट्यूशनल (संवैधानिक) तरीका है उसमें से कोई उत्तर जनता की समस्याओं का मिलता नहीं है। क्या करेगी जनता ? सरकार के वादे हैं, लेकिन वे वादे कैसे पूरे होंगे ? या तो तब तक हम इंतजार करें, या विपक्षी दलों के हाथ में सत्ता आये। कितने वर्षों में फिर सत्ता आयेगी ? १९६७ में आयी थी। सन् '६७ से लेकर '७२ तक कितने उलट-पुलट हुए। कांग्रेस की पहली हार हुई। क्या हो गया पाँच वर्षों के अन्दर ? कोल्हू के बैल की तरह यही जो तंत्र है, यही जो व्यवस्था है लोकतन्त्र की, इसीमें हम घूमते रहेंगे तो जनता को भाग नहीं मिलेगा। 'साँपनाथ की जगह नागनाथ' वाली बात होगी। अतः इन बीमारियों की जड़ में जाना है।

यह तर्क कि अगले चुनाव में जनता संवैधानिक तरीके से सरकार बदल सकती है, अब अर्थहीन हो गया है। संवैधानिक

संस्थाओं और पद्धतियों का जितना उल्लंघन एवं दुरुपयोग हुआ है, जितना लोकतंत्र की प्रक्रियाओं को वल्गराइज, कुंठित किया गया है, उसके बाद इस तर्क का क्या औचित्य रह गया है ?

हमारे चुनाव-कानून में कई कमियाँ एवं छिद्र हैं। सुधार की बातें वर्षों से चल रही हैं। लेकिन सत्ताधारी दल ने एवं सरकार ने इस दिशा में कुछ नहीं किया। मेरी दिलचस्पी थी इसलिए 'चुनाव सुधार समिति' का मैं सदस्य बना था। रिपोर्ट दिया। पाँच-छः बरस हो गये होंगे, शायद ७ वर्ष हो गये होंगे, आज तक वह पड़ा है। राजनीति के अन्दर जो भ्रष्टाचार है उसके ऊपर काबू पाने के लिए कई सुझाव हमने दिये। इलेक्शन की चुनाव-पद्धति में कुछ सुधार होना चाहिए इसके बारे में भी कई सुझाव हमने दिये।

राजनीतिक भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार की जड़

भ्रष्टाचार की समस्या व्यापक है। समाज का कोई भी अंग नहीं है, जहाँ यह रोग न फैला हो। जनजीवन में इसका प्रवेश हो गया है, घर-घर में प्रवेश हो गया है। आज की व्यवस्था हमें मजबूर करती है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भ्रष्टाचार करने को। अपना बच्चा बीमार है और दवा खुले बाजार में मिलती नहीं और काले बाजार में मिलती है, तो खरीदनी ही पड़ेगी। डॉक्टर ने वही दवा बतलायी है। और भी कितने कम्पल्शन्स हैं, कितनी मजबूरियाँ हैं। जनता का काम ही नहीं होता है, अगर रिश्वत न दें। इसका मैंने अध्ययन किया, लेख लिखे, बातचीत की लोगों से।

मेरे ध्यान में भी यह बात आयी, आपके भी ध्यान में आयेगी कि कहीं से किसी बीमारी के छोर को पकड़ना है। एक साथ हम हर पहलू में, समाज के हर अंग में जो भ्रष्टाचार है, एक साथ उसका

इलाज शुरू करें तो संभव नहीं है। उसकी जड़ में जाना होगा। और मैंने बहुत सोचा तो मेरी समझ में बात आयी। व्यापार में, उद्योग में और हर जगह भ्रष्टाचार अवश्य है, लेकिन यह दूर नहीं हो सकता है, यह काबू में नहीं लाया जा सकता है, जब तक कि राजनीति में और शासन में एवं सत्ता में जो भ्रष्टाचार है, उस पर काबू न पाया जाय। वहाँ से तो भ्रष्टाचार को निर्मूल ही करना होगा। अन्य क्षेत्रों के भ्रष्टाचारियों को पोषण मिलता है सत्ता के द्वारा, राजनीति के द्वारा।

किसी जमाने में समाज से भ्रष्टाचार निर्मूल हो जाय, सन्तों का ऐसा समाज बननेवाला है नहीं। लेकिन हर चीज की एक मर्यादा होती है, लिमिट होती है, सीमा होती है। सीमा के बाहर वह बात चली जाती है तो फिर वह जानलेवा हो जाती है। आज यह भ्रष्टाचार, जैसा कि मैं समझता हूँ, हद दर्जे को पार कर गया है। जवाहरलालजी के उस जमाने में भ्रष्टाचार नहीं था क्या, जरूर था। लेकिन इंदिराजी के जमाने में जितना यह रोग बढ़ा है उतना यह कभी नहीं था। चुनाव में जितना खर्चा बढ़ा है उतना यह कभी नहीं था, मर्यादा पार कर गया है। जनता की रोटी इस भ्रष्टाचार के सवाल से जुड़ी हुई है। अरबों रुपया देश का जाने कहाँ चला गया, किसके पॉकेट में चला गया ? जनता के पास तो नहीं पहुँचा। वह पॉकेट कितना गहरा था ! वह रुपया जनता के लिए, उसके कुएँ के लिए, उसकी खेती के लिए, उसके प्राइमरी स्कूल के लिए, और बातों के लिए खर्च हुआ होता, छोटे-छोटे उद्योग-धंधे गाँव के खड़े होते। तकलीफों के कारण जनता के हृदय में असन्तोष एवं हिंसा व्याप्त है, यह सरकार को समझना चाहिए। मुझे खबरें मिली हैं कि गरीब देहाती जिन्दा रहने के लिए अपने बच्चों को बेच रहे हैं। घुट-घुटकर मरने के बजाय बैनी क्षेत्र में एक पूरे कुटुम्ब ने एण्ड्रीन पीकर आत्महत्या

कर ली। ऐसे घर मैं जानता हूँ कि जवान बेटियाँ हैं, शादी नहीं कर पाते, रोते हैं। इन दुःखों और कष्टों के कारण आज आग लगी है। किसीको लगाने की जरूरत नहीं है उस आग को। बल्कि देखना यह है कि इस आग में कहीं देश न जल जाय। बल्कि इस आग के अन्दर से देश कुछ निखरे। जैसे सोना आग से निकल-कर निखरता है और अच्छा सोना बनता है।

समस्याओं की गंभीरता को समझिये

मैं देशभर में आग लगाता नहीं फिरता हूँ। यह मेरा काम नहीं है। जिसको आँखें हैं वह देख सकता है कि देशभर में आज आग सुलग रही है, और जैसा मैंने पटना में कहा था, ५ जून की उस सभा में, हुकूमत की कुर्सियों के नीचे आग है। जो उन पर बैठे हैं उनको यह आग न दीखे वह अलग बात है। गर्मी बढ़ेगी तो शायद उनके समझ में यह बात आयेगी। यह कोई जयप्रकाश नारायण आग लगा रहा है, यह कोई युवक या छात्र आग लगा रहे हैं ऐसी बात नहीं है। जनता कष्ट से अपना जीवन बिता रही है। महँगाई की चक्की में वह पिस रही है। जो भी काम जनता का हो, चाहे सरकारी दफ्तरों से हो, बैंकों से हो, सोसाइटियों से हो, कहीं से हो, बगैर रिश्वत के उनका काम होता नहीं। रेल की टिकट नहीं मिलती। और भी कितनी बातें नहीं होती हैं। कितने हमारे हजारों नौजवान हैं, जिनके माता-पिता, अभिभावक अपनी गाढ़ी कमाई के हजारों रुपये खर्च कर, अपनी जमीन रेहन रखकर उनको पढ़ाते हैं, और ऐसी पढ़ाई होती है कि हजारों नवयुवकों का जीवन नष्ट हो जाता है, दर-दर घूमते हैं, दर-दर ठोकर खाते हैं नौकरियों की खोज में। ऐसी गुलामी की शिक्षा दी जा रही है। बेरोजगारी है। ये सारी समस्याएँ गरीबों की हैं, पढ़े-लिखों की हैं, अनपढ़ों की हैं। पहले भी थीं, अंग्रेजों के राज में भी थीं, जवाहरलालजी के जमाने में भी ये समस्याएँ थीं। मेरा किसी

व्यक्ति से झगड़ा नहीं है—चाहे वे इंदिराजी हों या और कोई हो, हमारा तो नीतियों से, सिद्धान्तों से, कार्यों से झगड़ा है। जवाहरलालजी के साथ जो मतभेद थे वे खासकर परराष्ट्रीय मामलों में—हंगेरी, तिब्बत, चीन इ० के मामलों में थे, लेकिन इंदिराजी से तो अन्तर्देशीय मामलों में मतभेद हैं। सुरसा की तरह इन समस्याओं का आकार आज बढ़ा हुआ है और देश की सारी जनता को यह भय है कि सुरसा इनको निगल न जाय। यह स्थिति है। आज तो विस्फोट अनिवार्य है, नहीं होता है यही आश्चर्य होता है। हमारे देश की जनता में कितनी सहिष्णुता है, कितनी समझदारी है, कितना सयानापन है, यह मालूम होता है। लेकिन इसकी एक मर्यादा होती है। इस सारे असन्तोष को सही रास्ता देना होगा।

गुजरात ने प्रकाश दिखाया

सत्ताइस बरस हुए आजादी के। इस बीच में कई छोटी-छोटी लड़ाइयाँ हुई हैं। कहीं किसानों का कोई संघर्ष हुआ, कहीं मजदूर यूनियन ने कोई हड़ताल की, कहीं विद्यार्थी यूनियन ने कुछ किया। लेकिन ये सब छोटे-छोटे सवालों को लेकर के हुआ।

अभी तक याने पिछले दिसम्बर, जनवरी तक देश के विद्यार्थियों ने जो आन्दोलन किये, चाहे लखनऊ के हों, इलाहाबाद के हों, बी० एच० यू० के हों और कहीं के हों, छोटी-छोटी अपनी माँगों के लिए। उन्होंने आन्दोलन किये, लड़ाइयाँ लड़ीं—विद्यार्थी-जीवन से सम्बन्धित, परीक्षाओं से सम्बन्धित और इसी प्रकार के शिक्षा-सम्बन्धी, होस्टल-सम्बन्धी और फीस-सम्बन्धी प्रश्नों के लिए। परन्तु गुजरात के विद्यार्थियों को इसका श्रेय है कि उन्होंने पहली बार अपनी माँगों से ऊपर उठकर के कई ऐसी माँगों के लिए संघर्ष किया, जो राष्ट्र की माँगें हैं, सारे देश की

जनता की माँगें हैं—गुजरात की जनता की तो हैं ही, लेकिन सबके लिए हैं।

यह बात गुजरात ने सामने रखी कि आज जो मंत्रिमंडल है वह बहुत ही भ्रष्ट है। इसका भ्रष्टाचार सहन करने के लायक नहीं है और भ्रष्टाचार को दूर करना हो, मिटाना हो, तो इस मंत्रि-मंडल को जाना चाहिए। महँगाई बहुत है वह खतम होनी चाहिए। बेकारी है, पढ़े-लिखों की है, अनपढ़ों की है, वह खत्म होनी चाहिए। अब ये तीन जो बातें थीं—भ्रष्टाचार, महँगाई और बेरोजगारी, ये कुछ गुजरात के छात्रों की ही समस्याएँ नहीं थीं। सारे समाज की थीं और गुजरात के समाज की ही नहीं, सारे देश के समाज की थीं। यह पहली बार हुआ। उसके बाद बिहार के छात्रों ने आन्दोलन शुरू किया। उन्होंने एक चौथी बात जोड़ी। तीन तो गुजरातवाली और चौथी बात बिहार के छात्रों ने यह जोड़ी कि शिक्षा में आमूल परिवर्तन करो। यह निकम्मी शिक्षा है। इसके बदले में ऐसी शिक्षा दो, जो जीवनोपयोगी हो। जिस शिक्षा को प्राप्त करके अपने पैरों पर खड़े हो सकें हम। कुछ कर सकें।

बिहार जाग उठा

गुजरात का आन्दोलन ही शुरू हुआ था इस माँग से कि चिमनभाई पटेल इस्तीफा दें। लेकिन बिहार में गफूर मिनिस्ट्री का इस्तीफा हो, बिहार मिनिस्ट्री का इस्तीफा हो, विधानसभा का विघटन हो इससे आन्दोलन शुरू हुआ नहीं था। फिर भी आन्दोलन ने जोर पकड़ा और काफी जोर पकड़ा। प्रदेशव्यापी यह आन्दोलन हुआ। १८ मार्च को पटना में असेम्बली खुलनेवाली थी। हजारों लोग आनेवाले थे देहातों से, जिनमें छात्र ही अधिक थे। उन छात्रों ने वहाँ राज्यपाल साहब को असेम्बली भवन जाने

से रोका। और धरना वगैरह दिया। लाठी चली, गोलियाँ चलीं, पटने में आग लग गयी। असेम्बली भवन से मुश्किल से सौ कदम होगा, असेम्बली के जो सचिव हैं विश्वनाथ मिश्रजी का घर। वे जज की हैसियत रखनेवाले हैं। उनके घर में आग लगी। चिल्ला रहे हैं, स्पीकर से कह रहे हैं कि गेट खुलवा दीजिये, मैं जाकर देखना चाहता हूँ कि हमारे बाल-बच्चों की हालत क्या है। वह सारा जल गया। और होटल जल गये। दूकानें लूटी गयीं। लाखों की सम्पत्ति नष्ट हुई। निरपराध लोग मारे गये। यह सारा हुआ और कितने कांड हुए, उन सबमें जाने की जरूरत नहीं। परिणाम यह हुआ कि बिहार प्रदेश छात्र-संघर्ष-समिति ने कहा कि बिहार की मिनिस्ट्री को जाना चाहिए। मैंने इसका समर्थन किया कि तुम्हारी माँग तो उचित है। जिस मिनिस्ट्री की इतनी बड़ी निष्फलता हो, ऐसी नालायकी हो तो उसे जाना चाहिए। या तो असेम्बली इस सरकार को सेंसर करे, इनकी निन्दा करे, दूसरी मिनिस्ट्री बनाये, दूसरी गवर्नमेन्ट स्थापित करे या ये लोग जायँ। इन्हींकी ॲथारिटी के नीचे यह मिनिस्ट्री काम कर रही है। इस विधानसभा के तत्त्वावधान में यह मंत्रिमंडल काम कर रहा है। जनता का इसमें अविश्वास हुआ है। यदि यह अविश्वास बना रहा तथा और अधिक गहरा हुआ तो जल्द ही देश में तानाशाही कायम हो सकती है। अतः हमारे लोकतंत्र के लिए यह स्वस्थ और स्वागतयोग्य संकेत है कि जनता—सही अर्थों में लोकतंत्र की मालिक—खड़ी हुई है और असंवैधानिक किन्तु शांतिपूर्ण तरीकों से स्वयं को अभिव्यक्त कर रही है तथा राज्य-सत्ता को अपनी इच्छानुसार झुका रही है। संभव है, यह आन्दोलन कुछ लोगों को, विशेषतः जो सत्ता में हैं उनको, असंवैधानिक और लोकतंत्र-विरोधी लगे। असंवैधानिक तो यह है, किन्तु लोकतंत्र-विरोधी नहीं। जनता क्या करे, जब संवैधानिक संस्थाएँ

जनाकांक्षा का प्रतिनिधित्व करने में असफल हो जाती हों और उन समस्याओं का कोई हल नहीं प्रस्तुत करती हों, जिनकी चक्की में जनता पिस रही हो ?

जनता के असंतोष को, दुख-दर्द को, उसके कष्ट को, रोष को, क्रोध को सबको एक दिशा दी जाय। शांतिमय दिशा दी जाय। विधायक दिशा दी जाय। जनता को भुलावा देने के लिए नहीं, एक 'सेफ्टी वॉल्व' के लिए नहीं कि 'स्टीम' का 'प्रेशर' बहुत बढ़ गया तो 'सेफ्टी' वॉल्व नहीं है तो बॉइलर फूट जायगा। उस माने में नहीं कह रहा हूँ कि बॉइलर फूटने से बचा लेना है। आखिर 'सेफ्टी वॉल्व' के साथ-साथ इंजन भी तो रहता है ? उसी बॉइलर के सहारे रेलगाड़ी चलती है ७५ मील प्रति घण्टे की रफ्तार से। तो दिशा देने का मतलब यही नहीं है कि जनता के रोष को निकल जाने का एक रास्ता दे दो। सोडावॉटर का जोश निकल गया, फिर लोग ठंडे हो गये, ऐसा नहीं। आगे चलना है। छात्रों को यह इंजन बनना है।

सर्वस्पर्शी नैतिक उत्थान का यह आन्दोलन है

यह आन्दोलन केवल सत्ता में जो लोग हैं, राजनीति में जो लोग हैं, उनके सुधार के लिए नहीं है। यह एक ऐसा सुवर्ण अवसर है कि सारे वातावरण का नैतिक स्तर ऊँचा कर दिया जाय और एक नैतिक क्रांति हो। ऐसे छात्र हैं, जो इम्तहान में चोरी करते हैं, जेब में छूरा लेकर जाते हैं। निरीक्षक कहता है तो उसको छूरा दिखाते हैं, पैरवी करके नम्बर बढ़वाते हैं, ऊपर का क्लास बनाते हैं और क्या-क्या करते हैं। शिक्षक भी कई ऐसे हैं। हम जो साधारण नागरिक हैं, इस व्यवस्था ने हम सबको मजबूर कर दिया है बेईमान बनने के लिए। हम सबको भ्रष्ट बना दिया है इस व्यवस्था ने।

इस व्यवस्था को बदलना है, तोड़ना है, एक व्यापक नैतिक उत्थान का आन्दोलन करना है। यह संभव नहीं है कि समाज भ्रष्ट रहे और शासक, राजनीतिक नेता ये ही सुधर जायँ। राजनीति में जो बेईमानी आयी, और ऊपर से आयी, यह बिहार का ही रोग नहीं है, दिल्ली से यह रोग चला है। एक क्रांतिकारी परिस्थिति पैदा हो रही है मित्रो ! और सफल होती है क्रान्ति उसी समय, जब सत्ता को चलानेवाले जो लोग हैं वे सत्ता को लात मार करके आगे बढ़ जाते हैं। जो बागी हैं उनकी, बागियों की, कतार में पहुँच जाते हैं तो क्रांति को कोई रोक नहीं सकता। सत्ता, सत्ताहीन हो जाती है। जिनके बल पर सत्ताधारी सत्ता करते हैं वे उनको छोड़कर चले जाते हैं। रूस की क्रांति क्यों सफल हुई ? इसलिए सफल हो गयी कि रूस के जो सिपाही थे, जर्मनी के मोर्चे पर जो लड़ रहे थे, पोलैंड आदि में, वहाँ से अपनी बन्दूकें लेकर वे भाग गये नारा लगाते हुए, 'गीव मी पीस, गीव मी ब्रेड' 'शांति दो ! रोटी दो !' लेनिन ने कहा कि तुमको हम शांति भी देंगे और रोटी भी देंगे। तो सिपाही और फौज के लोग बागियों की कतार में आ गये। जारशाही खत्म हो गयी। जार की उतनी बड़ी हुकूमत खत्म हो गयी। इसलिए कि उनकी दीवारें ढह गयी थीं। यह परिस्थिति यहाँ भी पैदा होनेवाली है।

जनता को अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होगी

आज लोग कहते हैं, सहयोग क्यों नहीं करते आप, इंदिराजी के शासन के साथ और शासकों के साथ ? किस बात का हम सहयोग करें, किस बात के लिए करें, किस काम के लिए करें ? मैंने तो कितने सहयोग के प्रस्ताव किये ! आदरणीय शंकररावजी देव के सुझाव पर दो बरस हमने गँवाये पॉलिटिक्स ऑफ कन्सेन्सस के ऊपर। हमारे राजनारायणजी वगैरह उग्रवादी, समाजवादी मित्रों को लगता रहा कि पॉलिटिक्स ऑफ कन्सेन्सस आदि में जे० पी०

समय गँवा रहे हैं, अब तो पॉलिटिक्स ऑफ कॉनफ्लीक्ट चाहिए। कितनी कमेटियाँ बनीं। कमेटियों में से कुछ विचार लेकर के इंदिराजी के पास भेजा। पार्लियामेण्ट के मेम्बरों के पास मैंने छपी हुई चिट्ठी भेजी, जिसमें सुप्रीम कोर्ट और जनता के मूल अधिकारों के बारे में और छः सुझाव करप्शन दूर करने के बारे में थे। किसीने सुनवाई की? किसीने ध्यान दिया उस पर? छः बरस से वह एन्टीडिफेक्शन बिल क्यों पड़ा हुआ सड़ रहा है? यह लोकपाल बिल क्यों छः वर्षों से लटका हुआ है? जो बिल उन्हें पास करना होता है, उनके मतलब का होता है, स्टीमरोलर करके उसे पास कर लेते हैं। न सिलेक्ट कमेटी बनेगी, न पब्लिक ओपिनियन ली जायगी। पहली रीडिंग, दूसरी, तीसरी—बस, पास हो गया। चूँकि दो-तिहाई बहुमत है। करप्शन को रोकना चाहते हो तो किसी बात पर क्यों नहीं उपाय किया आज तक? कोई ध्यान देता है इन चीजों पर? संतानम कमेटी की रिपोर्ट, वांचू कमेटी की रिपोर्ट, ॲडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्म्स कमेटी की रिपोर्ट—ये तो सरकारी रिपोर्टें हैं, उन पर अमल हुआ? किसीने ध्यान दिया? तो मित्रो, हमें यह सोचना पड़ेगा।

इंदिराजी से मैंने बातें कीं। मुझे बड़ा असंतोष हुआ, मुझे समाधान नहीं हुआ और मेरे ऊपर यह असर पड़ा कि इन मामलों में इंदिराजी कुछ नहीं करेंगी, न कुछ करना चाहती हैं। शायद इनको या इनकी पार्टी को आज की व्यवस्था से लाभ होता है। मैं इस निर्णय पर आया कि जनता को स्वयं लड़ाई लड़नी होगी, भ्रष्टाचार मिटाने के लिए या उस पर काबू पाने के लिए, चुनाव की पद्धति को सुधारने के लिए या जनता के और जो सवाल हैं उनको हल करने के लिए। जनता स्वयं इस जिम्मेदारी को ओढ़ ले, जनता स्वयं लड़ाई लड़े, जन-संघर्ष हो। मेरा एक और निर्णय हुआ कि यह संघर्ष शांतिमय एवं निर्दलीय होगा और इसके

अगुआ छात्र, युवा होंगे। यह एक बहुत बड़ा महत्त्व का काम करना है सारे देश में। मैं यह नहीं कहता हूँ कि जो बिहार में हो रहा है वह बिहार तक ही सीमित रहना चाहिए; वे कोई बिहार की ही समस्याएँ हैं, उत्तर प्रदेश की वे समस्याएँ नहीं हैं या और प्रदेशों की नहीं हैं ऐसी बात नहीं। वे देशव्यापी समस्याएँ हैं। और सारे देश में उनके लिए कुछ-न-कुछ होना चाहिए। यह संघर्ष किसी व्यक्ति या दल के खिलाफ नहीं है। यह संघर्ष है, आज की व्यवस्था के खिलाफ। यह लड़ाई न सरकार को पलटने या विधानसभा को विघटित करने की है। यह तो संपूर्ण व्यवस्था-परिवर्तन की लड़ाई है।

यह आन्दोलन समय का तकाजा है

तो मित्रो, यह आन्दोलन किसीके रोकने से, जयप्रकाश नारायण के रोकने से नहीं रुकनेवाला है। यह आन्दोलन क्यों हुआ है? छात्रों में खलबली है, उनकी छात्र की हैसियत से समस्याएँ हैं: जैसे शिक्षा है; शिक्षा के बाद, डिग्री के बाद अन्धकार उनके सामने खड़ा है, इस प्रकार कॉलेजों में इम्तहान होते हैं, यह सारा कुछ होता है इस दोषपूर्ण शिक्षा के चलते। उसके अलावा छात्रों की भी, नागरिकों की भी समस्याएँ हैं। महँगाई की चक्की में आप पिस रहे हैं। दिन-रात महँगाई बढ़ती जाती है। भ्रष्टाचार है, रिश्वतखोरी है, बेकारी बढ़ती चली जा रही है—अन्य लोगों की भी, पढ़े-लिखे लोगों की भी। अगर ये सब बातें न होतीं, ये सब परेशानियाँ न होतीं, तो हजार जय-प्रकाश नारायण भी चाहते तो क्या यह आन्दोलन खड़ा होता? हजार छात्र-संघर्ष-समितियाँ चाहतीं तो क्या आन्दोलन खड़ा होता? जमाने की पुकार है यह।

मित्रो, आन्दोलन की चार माँगें हैं—भ्रष्टाचार, महँगाई और बेरोजगारी का निवारण हो और कुशिक्षा में परिवर्तन हो।

लेकिन समाज में आमूल परिवर्तन हुए बिना क्या भ्रष्टाचार मिट जायगा या कम हो जायगा ? महँगाई, बेरोजगारी मिट जायगी या कम हो जायगी ? शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन हो जायगा ? यह संभव नहीं है, जब तक कि सारे समाज में एक आमूल परिवर्तन न हो। इन चार माँगों में समाज का सारा भविष्य बन्द है। इन चार माँगों के उत्तर में, समाज की सारी समस्याओं का उत्तर है। यह संपूर्ण क्रांति है मित्रो ! ●



२. समस्याओं का हल

आर्थिक योजना की नीतियों में आमूल परिवर्तन आवश्यक

हमारे देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए, जो सबसे पिछड़े लोगों की तरफ सबसे पहले ध्यान दे। सबसे पहले, किनारे पड़ गये या पिछड़े रह गये लोगों से शुरुआत करना जरूरी है। आज के विकास की प्रचलित विचारधारा इस प्रश्न की एकदम उपेक्षा करती है। योजनाकार यह अनुमान करके चलते हैं कि विकास का लाभ धीरे-धीरे छूटे हुए और सबसे पिछड़े हुए लोगों को मिलेगा। इसको 'थियरी ऑफ परकोलेशन' कहा जाता है। यानी कि विकास का लाभ ऊपर से धीरे-धीरे उतरकर नीचे तक पहुँचेगा। आज इस देश में जो आयोजन हो रहा है और सर्वोदय

जिस तरह का आयोजन करना चाहता है, उन दोनों की दिशा के बीच में मूलभूत भेद यही है।

सच देखा जाय तो विकास की योजनाओं का मुख्य और सर्वप्रथम लक्ष्य यह होना चाहिए कि हरएक व्यक्ति को जीवन की प्राथमिक जरूरतों की चीजें मिल सकें। किन्तु आज हमारे देश में इतना भी कब सध सकेगा, यह कोई नहीं कह सकता। योजना-आयोग द्वारा दस-पन्द्रह वर्षों में इतना होगा ही, इसका आश्वासन वह नहीं दे पाता। अब कोई रास्ता तो निकलना चाहिए। एक तरफ हम नक्सलवादियों को गाली देते हैं, लेकिन दूसरी तरफ हरएक व्यक्ति को भोजन देने की व्यवस्था न कर सकें, तो ऐसा कब तक चल सकेगा ?

बेरोजगारी

आन्दोलन की चार प्रमुख माँगों में से एक है बेरोजगारी-निवारण। जनता की गरीबी एवं बेरोजगारी मिटेगी तुम्हारे बड़े कारखानों से ? एक सभा में मैंने एक बात कही, प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वी० के० आर० वी० राव ने भी कही और हम दोनों का समर्थन करते हुए जवाहरलालजी ने कहा कि प्रोफेसर राव और जयप्रकाश ने जो कहा, ठीक है। अपने सामने दो मिसालें हैं : एक बिहार है, जिसमें देश की बड़ी-से-बड़ी हेवी इंडस्ट्रीज हैं, लोहा भी है, सीमेन्ट भी है, हेवी इंजीनियरिंग भी है, यह सारा है और फिर भी यही सबसे गरीब प्रदेश है। दूसरी तरफ पंजाब है, जिसमें एक भी हेवी इंडस्ट्री नहीं है और सबसे समृद्ध प्रदेश है। यह बात खुद प्राइम मिनिस्टर ने स्वीकार की।

भ्रष्टाचार केवल नैतिक प्रश्न नहीं, गरीब की रोटी से जुड़ा है

दूसरी माँग है भ्रष्टाचार-निराकरण। भ्रष्टाचार का यह हाल है कि वह कोई केवल नैतिक प्रश्न नहीं रहा है। अरबों रुपया जो

गरीबों की भलाई के लिए पंचवार्षिक योजनाओं में या उनके बाहर भी उनके हित में खर्च करने का था, उन अरबों रुपयों में से न जाने कितना रुपया दूसरों की जेबों में चला गया। गरीब तक पहुँचा नहीं है। वह सारा रुपया गरीबों तक पहुँचा हुआ होता तो आज देश की गरीबी मिट तो नहीं गयी होती, लेकिन बड़ा अंतर हुआ होता उसमें। इसलिए भ्रष्टाचार कोई नैतिक प्रश्न नहीं है। देश की जनता की, खास करके गरीबों की, रोटी का सवाल उसके साथ जुड़ा हुआ है। बिहार में वरिष्ठ अधिकारी बताते हैं कि सरकारी खर्च का ५० प्रतिशत भ्रष्टाचारियों की जेबों में पहुँच जाता है। कुछ अधिकारी तो इस आँकड़े को ७५ प्रतिशत इतना ऊँचा बतलाते हैं।

भ्रष्टाचार हमें दूर करना है। उसकी जड़ में प्रहार करना है। कैसे होगा वह? पहले राजनीति के भ्रष्टाचार और प्रशासन के भ्रष्टाचार को मैं क्यों हाथ में लेता हूँ? इसलिए कि वह जड़ है। उसकी वजह से सारा जन-जीवन भ्रष्ट हुआ है।

भ्रष्टाचार में सत्तावालों का निहित स्वार्थ है

बिहार की ही बात लीजिये। किसे मालूम नहीं है कि बिहार में अनेक प्रभावशाली कैबिनेट मंत्री हैं, जो भ्रष्टाचारी हैं? मुझे भ्रष्टाचारियों के नाम एवं उनके खिलाफ स्पेसिफिक चार्जेस बताने के लिए कहा जाता है। वह सब मुख्य मुद्दा टालने के लिए है। भ्रष्टाचार से निपटने की उनकी इच्छा नहीं है। वह उन्हें पुसाता नहीं। कौन भ्रष्टाचारी है, यह जानने के लिए किसी जाँच कमीशन की नियुक्ति की जरूरत नहीं। उन्हें मालूम है यह सब। अभी-अभी तक मंत्रिमण्डल में रहे हुए एक मन्त्री से मैं बात कर रहा था। उन्होंने कहा, "जयप्रकाशजी, हम इस व्यवस्था के अन्तर्गत हैं। हम जानते हैं कि क्या हो रहा है, कैसे पैसे बनाये जाते हैं इत्यादि। इसे प्रधानमन्त्री को बताने के लिए किसी समिति की आवश्यकता

नहीं। मुझे विश्वास है कि प्रधानमन्त्री यह सब जानती हैं। क्योंकि पैसा उन्हींके पास जाता है। चुनाव लड़ने के लिए उन्हें करोड़ों रुपया चाहिए। मन्त्री को कौन पैसा देगा ? लोग प्रधानमन्त्री को ही देंगे। यह सौदा है। एक लाख दोगे तो दस लाख बनाओगे। इसलिए वे काला बाजारियों के खिलाफ सख्ती नहीं बरत सकते। प्रशासन-सुधार, सन्तानम, वांचू इत्यादि कई समितियों ने राजनीतिक भ्रष्टाचार-उन्मूलन के बारे में कई सुझाव दिये हैं। अन्य अधिकारी लेखकों के भी सुझाव हैं। कई न्यायाधीशों के—मसलन अय्यर कमीशन, मुधोलकर कमीशन, सरजूप्रसाद कमीशन के रिपोर्ट्‌स हैं। मैंने भी सुझाव दिये हैं। फिर भी दिल्लीवाले इस पर कोई अमल नहीं करते, कोई कानून उसके लिए नहीं बनाते। इस बात को कोई गम्भीरता से क्यों नहीं देखता, क्यों नहीं सोचता, मेरी समझ में नहीं आता। आज चारों ओर भ्रष्टाचार का वातावरण है।

भ्रष्टाचार के कारण जीवनोपयोगी चीजों का कृत्रिम अभाव पैदा हो जाता है और कीमतें बेतहाशा बढ़ती हैं। वैसे ही भ्रष्टाचार से प्रशासन की कार्य-क्षमता पर परिणाम होता है और गरीब एवं साधनहीनों के बजाय अमीर एवं प्रभावशाली लोगों के हित में भ्रष्टाचार काम करवाता है। यद्यपि समाज में सदाचारी लोग अधिक हैं तभी समाज टिका हुआ है, फिर भी दिल्ली से लेकर नीचे तक जो भ्रष्टाचार फैला हुआ है उसमें सदाचारियों के लिए टिकना मुश्किल होता जा रहा है।

भ्रष्टाचार के खिलाफ सदाचार ही खड़ा हो सकता है

भ्रष्टाचार केवल मंत्रियों की ही ठीकेदारी नहीं है। व्यापार में, उद्योग में, नगरपालिकाओं में भी भ्रष्टाचार है। शिक्षा-संस्थाओं में भ्रष्टाचार है, विद्यार्थियों में भी भ्रष्टाचार है। हमारे यहाँ तो

निरीक्षक के सामने ही विद्यार्थी किताबें खोलकर नकल करते हैं। मजाल है किसीकी कि कोई बोले, और अगर किसीने हिम्मत कर भी दी तो वह छुरा निकालेगा। अगर ऐसे विद्यार्थी भ्रष्टाचार के विरुद्ध आन्दोलन उठायें भी तो उसमें क्या ताकत होगी? तोड़-फोड़ कर दें, आग लगा दें यह हो सकता है, लेकिन उसमें से कोई परिणाम नहीं निकलेगा। इसलिए भ्रष्टाचार का विरोध करनेवाला खुद सदाचारी होना चाहिए। भ्रष्टाचार के विरोध में सदाचार ही खड़ा हो सकता है।

भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई लोगों को ही लड़नी होगी

भ्रष्टाचार के मामले की तरह चुनाव के तरीकों में सुधार के लिए भी मैंने कोशिश की। मैंने कोशिश की कि पार्टी लीडरों की आपसी बातचीत, सेमिनार आदि करके सर्वसम्मति से इस सिल-सिले में एक नतीजे पर पहुँचा जाय कि चुनाव का जो तरीका है, उसके जो कानून हैं, पीपुल्स रीप्रेजेन्टेशन एक्ट (चुनाव कानून), उसमें क्या सुधार लाया जाय। मेरी इस कोशिश में विपक्षी पार्टियों का थोड़ा सहयोग रहा, लेकिन कांग्रेस पार्टी का कुछ भी सहयोग नहीं मिल सका। काफी लम्बे तजुरबे के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि अगर इस सिलसिले में कुछ किया जा सकता है तो वह जनता ही कर सकती है, लोग ही कर सकते हैं। समझाने-बुझाने, प्रचार करने, लेख लिखने या सेमिनार करने से कुछ होता नहीं। जिनके हाथ में सत्ता है, जो पॉवर में हैं, जो इससे फायदा उठाना चाहते हैं, वे इसमें कोई तब्दीली नहीं चाहते। हो सकता है, दूसरी पार्टियों को भी मौजूदा चुनाव के तरीकों से और कानून से फायदा पहुँचता हो। बहरहाल, मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इसके लिए भी लोगों को ही लड़ना पड़ेगा।

लड़ाई का क्या तरीका होगा? गुजरात में भी करप्शन को

ही लेकर बात शुरू हुई, लेकिन बात आगे नहीं बढ़ी। गुजरात में छात्रों ने अपनी शक्ति से रास्ता खोला यह उनकी बड़ी सफलता हुई। लेकिन इतनी बड़ी जीत के बाद आगे का जो काम था वह नहीं हुआ। इस माने में गुजरात में विफलता हुई। आपको मालूम ही है कि मैंने इलेक्शन सुधार के लिए एक कमेटी बनायी है, इसने काम करना शुरू कर दिया है और इसकी रिपोर्ट भी आ जायगी। 'इंडियन ओपीनियन' एक पत्रिका है। उसके सम्पादक श्री एरिक 'ड कास्टा इस कमेटी के संयोजक हैं और सदस्यों में एक बम्बई हाईकोर्ट के भूतपूर्व चीफ जस्टिस श्री तारकुंडे हैं। वे सुप्रीम कोर्ट में प्रैक्टिस करते हैं। पार्लियामेण्ट के भूतपूर्व स्पीकर श्री मावलंकर के पुत्र श्री पुरुषोत्तम मावलंकर, जो अहमदाबाद से स्वतंत्र एम० पी० हैं, दूसरे सदस्य हैं। तीसरे सदस्य बम्बई हाईकोर्ट के एडवोकेट श्री ए० जी० नूरानी हैं। वह एक मशहूर पत्रकार भी हैं और इंडियन एक्सप्रेस में लिखते हैं। उनकी एक अच्छी किताब 'मिनिस्टर्स मिसकान्डक्ट' हाल में छपी है। चौथे सदस्य श्री मीनू मसानी हैं। उन्होंने इन समस्याओं का काफी अध्ययन किया है और लिखा भी है। पाँचवें सदस्य अहमदाबाद युनिवर्सिटी के पोलिटिकल साइन्स के प्रोफेसर और डीन श्री के० डी० देसाई हैं। 'सिटीजन्स फॉर डेमोक्रेसी', जिसका मैं अध्यक्ष हूँ, उसकी ओर से दिल्ली में एक सेमिनार मैं बुलाना चाहता हूँ। इसमें पार्लियामेण्ट के सब पार्टियों के प्रतिनिधियों को बुलाऊँगा। कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष और मंत्री को भी आमंत्रित करूँगा। और कोशिश करूँगा कि चुनाव के तरीकों में सुधार के लिए कोई सर्वसम्मत रास्ता ढूँढ़ा जाय। इस तरह दोनों काम (आन्दोलन एवं विचार-विमर्श) साथ-साथ चल रहे हैं। लेकिन इससे (सेमिनार से) मुझे कोई ज्यादा उम्मीद नहीं है, क्योंकि जो लोग पॉवर में हैं, वे कुछ सुननेवाले नहीं हैं।

अब लोग इस मामले में क्या करें ? विपक्षी पार्टियाँ भी कोई दूध की धुली नहीं, वे भी इस तरह के तरीके अपनाती हैं। अच्छे और बुरे लोग तो हर जगह हैं, लेकिन जो चुनाव में खड़ा होता है या उतरता है, वह जीतना चाहता है। पार्टी भी जीतना चाहती है। अंग्रेजी की एक कहावत है—ऑल इज फेअर इन लव ऐंड वॉर। तो यह लड़ाई है और यहाँ हर तरह के हथकंडे इस्तेमाल किये जाते हैं! मैं चाहता हूँ कि इस आन्दोलन से जनता में जागरण आ जाय और हालत ऐसी हो जाय कि ये सब लोग बार-बार जनता को धोखा न दे सकें, पैसे देकर या जात-पाँत का सवाल उठाकर और न किसी और तरीके से गुमराह कर सकें।

न मंत्रिमंडल के इस्तीफे से और न विधानसभा के विघटन से भ्रष्टाचार की समस्या हल होती है। इतना ही होता है कि भ्रष्टाचार का केन्द्र बना हुआ था, भ्रष्टाचार का एक सिंबल बन गया था, प्रतीक बन गया था, यह मंत्रिमंडल, यह हुकूमत, यह शासन, यह प्रशासन और चूँकि उसके समर्थक ये लोग, ये विधानसभा के लोग, वे उसके प्रतीक बने हुए थे, अगर जनता की शक्ति से, युवकों की शक्ति से, छात्रों की शक्ति से उनको अपनी कुर्सियों पर से हटना पड़ा, तो यह भी छोटी बात नहीं हुई, बड़ी बात हुई।

जन-जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी हटाना है

राशन शॉप की दूकान में चले जाइये तो पीछे के दरवाजे से ब्लैक से जितनी चीनी खरीदना चाहें खरीद लीजिये। तो ऐसा मत समझिये कि यह भ्रष्टाचार सिर्फ प्रशासन और शासन का भ्रष्टाचार है। वह जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। लेकिन 'यथा राजा तथा प्रजा' पुरखाओं ने कहा है। गोमुख में, गंगोत्री में, विष मिला दिया जाय, वहाँ का पानी जहरीला हो जाय तो पटना की गंगा भी जहरीली हो जायगी। इसलिए उसको पहले

दुरुस्त करना है। लेकिन उसके साथ-साथ मित्रो, मैं व्यापारियों को चेतावनी देता हूँ कि हमारे बच्चे, हमारे साथी, हमारी तरुण-शांति-सेना, हमारे सर्वोदय के लोग दूकान को नहीं लूटेंगे, आग नहीं लगायेंगे, आपकी रक्षा करेंगे, लेकिन आपका काम है कि आप संगठन ऐसा बनाइये कि चीजों की कमी है तो जनता को चीजें मुहैया हो सकें। कंट्रोल आप आपस में कीजिये। सरकार के कंट्रोल का नतीजा हम देख चुके हैं। बड़े किसान जो होर्डिंग (जमाखोरी) करते हैं क्या उन्हें हम पकड़ेंगे नहीं? उन्हें होर्डिंग करने देंगे? लोगों को खाना नहीं मिलता है, और भाव बढ़ेगा तो बेचियेगा आप? तिजोरी भरियेगा? और यहाँ लोग भूखे मरेंगे? भारत में रहते हैं आप, कहाँ रहते हैं? यह नहीं चलेगा। और कौन नहीं चलने देगा? लोक-शक्ति। इस लोक-शक्ति (जो आन्दोलन से पैदा हो रही है) का सीधा संबंध, जनता की जो ज्वलंत समस्याएँ हैं, जीवन-मरण की समस्याएँ हैं, उनके साथ जोड़ना है। थोक व्यापारी हों या खुदरा व्यापारी। हमने व्यापारियों की भी मीटिंग की तो उसमें थोक व्यापारी और खुदरा व्यापारी आपस में लड़ गये। हमने कहा कि जाइये आप लोग। आपस में समझौता कर लीजिये, फिर मेरे पास आइये। अव उनकी कमेटी बन गयी है। थोक व्यापारी और मिलवाले यदि भ्रष्ट हैं तो उनको भी पकड़ेंगे।

समझौते को भंग किया जाता है तो उसके लिए कुछ सजा के बारे में भी सोचा जा सकता है। उसका अहिंसक प्रतिकार करना, बहिष्कार, घर के सामने धरना आदि उपाय हो सकते हैं। लूट-खसोट नहीं करेंगे, आग नहीं लगायेंगे, लेकिन उनके दूकान का माल, चाहे पुलिस आ जाय तो उसके सामने भी निर्धारित दाम से बेचेंगे और उसके पैसे उसको दे देंगे। इस प्रकार कालाबाजार बन्द हो सकता है। व्यापारी कोई धर्मादा संस्था नहीं

है। वह मुनाफे के लिए काम करता है। तो मुनाफा भले हो, लेकिन मुनाफाखोरी नहीं होनी चाहिए। मुनाफे की एक सीमा होनी चाहिए। जमाखोरी और भ्रष्टाचार न हो। इसलिए समाज के प्रबुद्ध लोग और संस्थाओं को समाज के संतरी (वॉच डॉग) बनकर निगरानी करनी चाहिए। उसके सिवा भ्रष्टाचार दूर नहीं होगा, नहीं होगा, नहीं होगा। तो मित्रो, ऐसी जनशक्ति बननी चाहिए, मुहल्ले-मुहल्ले में ऐसी समितियाँ बननी चाहिए।

महँगाई

इन छात्रों की तीसरी माँग है—महँगाई हटाओ। परन्तु किसके बूते में है यह महँगाई हटाओ ? महँगाई के कई कारण हैं। कुछ तो दुनिया की परिस्थिति के कारण और कुछ भ्रष्टाचार के कारण। उसके लिए अधिकांश जिम्मेदार हैं—भारत सरकार की गलत, दोषपूर्ण आर्थिक नीतियाँ और गलत योजनाएँ। सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण उन नीतियों के चौखटे के अन्दर भी जो गड़बड़ी होती है, काला-बाजारी होती है, मुनाफाखोरी होती है, चीजों को गायब करने की कोशिश होती है यह बन्द होना चाहिए।

कैसे ? मुहल्ले-मुहल्ले की छात्र-संघर्ष-समितियाँ, जन-संघर्ष-समितियाँ ऐसी शक्ति पैदा कर दें और व्यापारियों को कह सकें कि भाई, देखो, तुम हमारे भाई हो, व्यापार करो, दूकानदारी करो, हम कुछ नहीं बिगाड़ेंगे तुम्हारा। लेकिन ठीक तरह से चलो। जनता अब जग गयी है। अब सोयी हुई नहीं है। मैंने कहा कि जनता की आवश्यकता की वस्तुओं के बारे में जनता, थोक और खुदरा व्यापारी, प्रशासन, छात्र मिलकर भाव तय कर दें कि इस भाव पर आपको बेचना होगा। किस राशन की दूकान में कितनी चीजें एलॉट हुई हैं उसकी लिस्ट रहे।

पटना में मैंने इस समस्या के विभिन्न पहलुओं पर सरकार के सम्बद्ध अधिकारियों के साथ मिलकर विचार करने के लिए एक समिति का गठन किया है। उसके बाद खुदरा एवं थोक व्यापारियों के प्रतिनिधियों तथा वनस्पति तेल जैसी आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति करनेवाले उद्योगों के प्रतिनिधियों के साथ बैठकें आयोजित की जायेंगी। उचित मूल्य की दूकानों के पास जो जाली राशनकार्ड हैं उनका पता लगाने के लिए सरकारी अधिकारियों और छात्र एवं जन-संघर्ष-समितियों के प्रतिनिधियों की संयुक्त समितियाँ गठित की जायेंगी। छात्र एवं जन-संघर्ष-समितियों के ऐसे स्वयंसेवक दल भी होंगे, जो जागरूक प्रहरी के रूप में काम करेंगे और यह सावधानी रखेंगे कि तय किये गये मूल्यों का अनुसरण किया जाय तथा जिन वस्तुओं का अभाव है और जो सरकार द्वारा दूकानदारों को आवंटित की गयी हैं, वे काला बाजार में जाकर लुप्त न हो जायँ। आवश्यकता होने पर मूल्य नियंत्रित करने तथा सामान्य जनता को आवश्यक वस्तुएँ सुलभ कराने के लिए शांतिमय सत्याग्रह के विभिन्न रूप अपनाये जायेंगे।

कुशिक्षा

अब शिक्षा की चौथी माँग को लीजिये। अंग्रेजों ने जिस पद्धति को चलाया था, वही पद्धति आज विश्वविद्यालयों में चल रही है। थोड़ा कुछ नहीं-के-बराबर इधर-उधर फर्क हुआ है। विद्यार्थी युनिवर्सिटी सीनेट में प्रतिनिधि बनते हैं, लेकिन वह अपने में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। जो भी डिग्री लेकर निकलता है वह नौकरी खोजता है। आज अगर आपका प्रधानमंत्री बन जाता है तो भी सबको नौकरी नहीं दे सकेगा। आज नौकरी है ही नहीं। माओ ने युवकों से कहा : "खेतों में और कारखानों में जाओ और वहाँ सीखो-समझो, वही तुम्हारा विश्वविद्यालय है।" बापू ने भी वही कहा था कि विद्यार्थी स्वावलम्बी

हो, उसका आत्मविश्वास प्रकट हो, ऐसी शिक्षा होनी चाहिए। आज तो 'नौकरी दो, नौकरी दो, गुलामी दो, गुलामी दो' ऐसी शिक्षा है। हमको न व्यापारी के, न सरकार के गुलाम बनना है। हमको तो देश के लिए उत्पादन और संगठन करना है। मेरा निवेदन है कि जो क्रांतिकारी परिस्थिति शिक्षा के क्षेत्र में आयी है उस पर विचार कीजिये। प्राध्यापक लोगों को भी आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि वे इस क्षेत्र के तज्ञ हैं। सभी लोग सोचें, समझें कि किस प्रकार से शिक्षा में क्रांति हो।

शिक्षा में आमूल परिवर्तन आवश्यक

शिक्षा में आमूल परिवर्तन होना चाहिए। इसमें इधर-उधर करने से, पिच्चीकारी और चिप्पीकारी करने से कुछ होनेवाला नहीं है। इस समय वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन-सम्बन्धो अपनी क्रियात्मक चिन्ता के कारण मैं वर्तमान पद्धति को ज्यादा अच्छी तरह समझने की दृष्टि से काफी संख्या में छात्रों और अध्यापकों से मिलता रहा हूँ। इस तरह मैं जिन निष्कर्षों पर पहुँचा उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि युवक-युवतियों में ज्ञान और हुनर हासिल करने की सच्ची आकांक्षा होना, ज्यादा अच्छी और सार्थक शिक्षा की पहली आवश्यकता है। मुझे यह देखकर बड़ा धक्का लगा कि हमारे छात्रों में बहुत थोड़े से ही ऐसे हैं, जिनमें इस तरह की आकांक्षा है। शेष केवल कोई शैक्षिक उपाधि चाहते हैं जिसका महत्त्व उसके शैक्षिक नहीं, वरन् व्यावसायिक मूल्य के कारण है। अधिकांश छात्रों के लिए शैक्षिक उपाधि रोजगार पाने का जरिया है। शिक्षा और उपाधियों के प्रति माता-पिता और अभिभावकों का भी यही दृष्टिकोण है। छात्रों या अभिभावकों में जो अपवाद हैं, उनसे सामान्य स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

दो मौलिक सुझाव

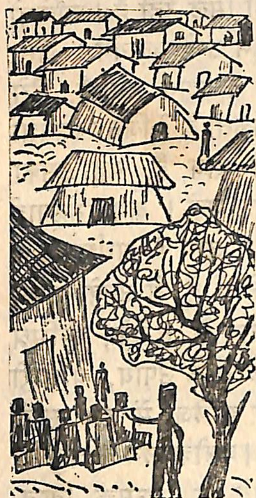
वास्तविकता यह होने पर शिक्षा में कोई मौलिक परिवर्तन तब तक संभव नहीं है, जब तक कि या तो (क) उपाधियाँ समाप्त न कर दी जायँ या (ख) उपाधियों का रोजगार से कोई संबंध न रहे। नौकरियाँ देनेवाले चाहे सरकारी क्षेत्र हों या निजी, जिस प्रकार का काम हो उसके अनुरूप स्वयं अपनी ओर से परीक्षाएँ ले सकते हैं। भरती के बाद आवश्यकता हो तो वे सेवा-काल में अतिरिक्त शिक्षण और प्रशिक्षण को व्यवस्था कर सकते हैं। उपाधियों के प्रति दृष्टिकोण में ऐसा मौलिक परिवर्तन एकाएक नहीं हो सकता। यह एक लम्बी प्रक्रिया होगी, जिसमें पारस्परिक लाभ के लिए विश्वविद्यालयों और रोजगार देनेवालों का एक-दूसरे से सहयोग आवश्यक है।

उपाधियाँ समाप्त करने का विचार बिलकुल नया या क्रांति-कारी नहीं है। वर्तमान स्थिति में यह बड़ी समझदारी का काम होगा। उपाधि की जगह क्या होगा ? केवल एक प्रमाणपत्र, कि विद्यार्थी कितने वर्ष महाविद्यालय में रहा, कितने घंटे कक्षाओं में रहा और दूकानों, कारखानों, दफ्तरों और खेती आदि में काम किया। और किन विषयों में उसकी रुचि है। उसकी योग्यता और कार्यकुशलता को परखना उसे रोजगार देनेवाले का काम होगा। अगर किसी विद्यार्थी ने स्वयं अपना काम चलाने की योजना बनायी हो तो विश्वविद्यालय और ज्ञान प्राप्त करने के अन्य माध्यम, अर्थात् कारखाने, कार्यालय, या खेत (फार्म) आदि आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त करने में उनकी सहायता करें। स्पष्ट ही उसे किसी शैक्षिक उपाधि की आवश्यकता नहीं होगी।

आन्दोलन स्वयं एक खुला विश्वविद्यालय है

जो शिक्षा विद्यार्थियों को इस आन्दोलन से मिल रही है वह

खुद बहुत महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। उन्होंने तो सिर्फ स्कूल और कॉलेज छोडा है, यहाँ जिन्दगी का स्कूल सामने है। उसका ज्यादा महत्त्व है और ज्यादा अच्छी शिक्षा उनको मिल रही है। कॉलेजों में वह जो कुछ नहीं पढ़ पाते हैं वह हम उन्हें पढ़ायेंगे। जैसे, करप्शन के खिलाफ लड़के लड़ रहे हैं तो करप्शन क्यों है, कैसे पैदा होता है और उसे कैसे मिटाया जा सकता है ? जिन विशेषज्ञों ने इसका अध्ययन किया है उनकी क्या राय है, वह इसका अध्ययन करें, ताकि वह इस चीज को समझ सकें। अगर महँगाई है, तो क्यों है और उसे कैसे दूर किया जाय ? अर्थशास्त्र के विशेषज्ञों की भिन्न-भिन्न रायें इस सिलसिले में हैं, वे उनके सामने रखी जायँ। इसी तरह बेरोजगारी, चुनाव के तरीके, विभिन्न कानून और उनकी त्रुटियाँ, उनको दूर करने के उपाय, ये सारी चीजें उनको बतलायी जायँ। स्कूल और कॉलेजों में इन सारी बातों की शिक्षा उनको नहीं मिल सकती। करीक्युलम के अनुसार भी हम छात्रों की मदद करें। इसके अलावे भी, उन्मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना करके शिक्षा उनको देने की योजना बन रही है। और फिर इस आन्दोलन में कार्य करके जो तजुरबा हासिल होगा ये तीनों मिलाकर उनकी शिक्षा पूर्ण होगी। ●



३. लोकतन्त्र

लोकतंत्र एवं प्रतिप्रभावी शक्तियाँ

चूँकि हमारा देश पिछड़ा हुआ है मित्रो, इसलिए इस देश में पॉलिटिक्स का, राजनीति का, पावर का, सत्ता का, गवर्नमेन्ट का जो बड़ा स्थान है वैसा स्थान दुनिया के जो विकसित देश हैं, उनमें नहीं है। वहाँ पॉलिटिक्स का इतना महत्त्व नहीं है। वहाँ सत्ता का ऐसा स्थान नहीं है।

अपना देश पिछड़ा हुआ है, इसलिए बावजूद इसके कि हमने लोकतंत्र की स्थापना की है, विकसित देशों के लोकतांत्रिक समाज में जो 'काउन्टर वेलिंग फोर्सेस' (प्रतिप्रभावी शक्तियाँ) याने परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करनेवाली, एक-दूसरे को काबू में

रखनेवाली शक्तियाँ होती हैं, वे यहाँ विकसित नहीं हुई हैं। विकसित समाज में एक 'इन्फ्रा स्ट्रक्चर' होता है, जनता और सत्ता के बीच में, नीचे और ऊपर के बीच में कई तरह की कई सतहों पर विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ रहती हैं, भिन्न-भिन्न प्रकार के बनाव रहते हैं, जो लोकतंत्र को ठीक रास्ते पर चलाने की गारंटी होते हैं। इनमें से पहली शक्ति है प्रबल प्रतिपक्ष। ऐसा प्रभावी प्रतिपक्ष सत्ताधारी पक्ष के दोष को, ऐब को दूर करता रहता है। निक्सन ने भ्रष्टाचार किया। उसका 'इम्पीचमेंन्ट' होने की नौबत आ गयी ! लेकिन यहाँ कोई किसीका 'इम्पीचमेन्ट' कर दे ! आज तक नागरवाला केस का कोई भेद खुल पाया है ? यह कोई मामूली बात है कि ६० लाख रुपया किसीके टेलीफोन पर दे दिया जाय, किसी आदमी को, जिससे जान-पहचान भी नहीं है, न किसी एकाउन्ट में लिखा हुआ है, न कोई बैंक में जमा है वह एकाउन्ट। इसका भेद कोई खुला है ? और देश के किसी पत्रकार को या किसी दैनिक पत्र को यह हिम्मत है कि उसके वह पीछे पड़े ? नागरवाला भी मर गये, जो डी० एस० पी० उसकी 'इन्क्वायरी' कर रहे थे वे भी शायद एक 'एक्सीडेन्ट' में मारे गये। वह अध्याय ही बन्द हो गया। एक वाटरगेट अमेरिका में हुआ तो यह हालत है। यहाँ तो दिन-रात वाटरगेट है। बिहार में कितने वाटरगेट हुए हैं, कुछ ठिकाना नहीं। अपने यहाँ संतुलित्त पार्टी सिस्टम नहीं है। पश्चिम में संतुलित पार्टी सिस्टम है। एक पार्टी सत्ता में है, दूसरी विपक्ष में है, लेकिन इस हालत में है कि अगले चुनाव में इनको अपदस्थ कर दे सकती है। लेबर पार्टी को डर है कि कदम गलत उठाया तो कंजरवेटिव पार्टी हमको अगले चुनाव में हरा देगी। फोर्ड को डर है कि डेमोक्रेट्स आ जायेंगे। तो एक बराबर का जोर है पहलवानों में। कभी एक दूसरे को चित्त कर देता है तो कभी दूसरा पहले को चित्त कर देता है।

यहाँ एक तरफ कांग्रेस है, एक बड़ा भारी हाथी और दूसरी तरफ छोटी-छोटी पार्टियाँ हैं, उनको चूहा कहा जाय तो वे नाराज होंगे। लेकिन छोटे-छोटे हैं। ऐसे हैं कि आपस में मिल नहीं पाते हैं। टूटते ही जाते हैं, टूटते ही जाते हैं। कम्युनिस्ट पार्टी जैसी एक संगठित पार्टी टुकड़े-टुकड़े हो गयी, नक्सलपंथी अब चार पंथों में हो गये हैं। पता नहीं और कई पंथ हो जायेंगे। समाजवादियों का यही हाल है। कांग्रेस का हाल यही देखा हमने। जनसंघ एक दूसरी संगठित पार्टी है। उसमें भी बलराज मधोक साहब ने अलग कर लिया। पता नहीं अपने देश में क्या यह बुराई है। इस 'अनबैलेन्स्ड पॉलिटिकल सिस्टम' में 'करेक्टिंग फोर्स' नहीं है।

दूसरा है, प्रबल जनमत, जिसका प्रभाव प्रतिनिधियों पर निरंतर पड़ता है। अमेरिका में हर कांग्रेस के सदस्य को खयाल रखना पड़ता है कि हमारे चुनाव-क्षेत्र में लोकमत कैसे चल रहा है। हरएक के कान धरती पर—अपने क्षेत्र पर—लगे हुए हैं। यहाँ किसीको परवाह है ! लोकमत है ही नहीं।

तीसरा, स्वतन्त्र और साहसी प्रेस। पत्र-पत्रिकाओं के रोल होते हैं। फ्री प्रेस होता है। स्वतन्त्र प्रेस। भारत में स्वतन्त्र प्रेस नहीं हैं। कुछ बहादुर लोग हैं, जो आज की परिस्थिति में भी स्वतन्त्र रूप से अपना विचार लिखते हैं। लेकिन दबाव पड़ते जाते हैं, विज्ञापन बन्द कर दिये जाते हैं। डी-लिस्ट कर दिया जाता है। 'प्रदीप' डी-लिस्ट कर दिया गया, विज्ञापन बन्द हो गया। 'सर्चलाइट' डी-लिस्ट हो गया, विज्ञापन बन्द हो गया। आखिर ये घाटे पर तो नहीं चल सकते हैं। मालिक लोग, चलानेवाले लोग, बगैर आमदनी के कैसे चलायेंगे ? तो फ्री प्रेस नहीं हैं भारत में। निक्सन जैसे राष्ट्रपति के नाको दम कर दिया प्रेस ने। 'वाशिंगटन पोस्ट', 'न्यूयार्क टाइम्स' आदि कितनों ने नाको दम कर दिया। कोई उनका बिगाड़ नहीं सकता है। किसीकी हिम्मत उनके

विज्ञापन रोकने की, डी-लिस्ट करने की नहीं है। सरकारी विज्ञापनों पर वे पलते भी नहीं हैं। विकसित समाज है।

चौथा, शिक्षित समुदाय (एकेडेमिक कम्युनिटी) का जो वैचारिक और नैतिक असर होता है। एक शक्ति है यह विकसित समाज में। किसिंजर हार्वर्ड युनिवर्सिटी से आ करके सरकार में फॉरेन सेक्रेटरी हुए, इतने पॉवरफुल प्रोफेसर रहे वे। कल यदि नौकरी छूटेगी, विदेश-सचिव नहीं रहेंगे, तो फिर हार्वर्ड चले जायेंगे। गालब्रेथ भारत में राजदूत थे। फिर हार्वर्ड चले गये। ऐसे ये लोग कुछ कहते हैं तो सारे देश पर असर पड़ता है। यहाँ के विद्यार्थियों में कुछ तो हिम्मत है, शिक्षकों में हिम्मत नहीं है। यहाँ के विश्वविद्यालय तो एस्टाब्लिशमेंट के पार्ट हैं। सरकार पर आश्रित हैं। भय है कि आन्दोलन का समर्थन करेंगे तो नौकरी चली जायगी।

इस सारे इन्फ्रा-स्ट्रक्चर का, याने जनता और शासन के बीच की संरचना का अपने यहाँ नितान्त अभाव है।

फिर वहाँ मजदूरों के ट्रेड यूनियन हैं। ट्रेड यूनियन वहाँ की एक पॉवर है। वह कोई भिखारी नहीं है। उसमें यह शक्ति है कि हुकूमत को हिला दे। ये फैसला करें कि कौन कुर्सी पर बैठेगा। आज की लेबर पार्टी तो ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस की ही पार्टी है।

ऐसी स्थिति में हमारा लोकतंत्र केवल नाममात्र का रह जाता है। इस पूरी अन्तरिम संरचना—इन्फ्रा-स्ट्रक्चर—का निर्माण तो एक दिन में नहीं हो सकता। परन्तु उसके अभाव में आम जनता या मतदाता मतदान के सिवा कोई भी पार्ट अदा नहीं कर सकता। इसके परिणामस्वरूप मंत्री तथा विधायक निरंकुश तथा स्वच्छन्द हो जाते हैं, और जनता का किसी प्रकार का अंकुश उन पर नहीं रहता, सिवा इस भय के कि अगले चुनाव में

जनता यदि चाहे तो उनको वोट न दे। परन्तु यह भय भी रुपया, जाति, बल-प्रयोग, मिथ्याचरण आदि के कारण प्रभावहीन हो जाता है। दो या तीन दिन में सारे राज्य में मतदान पूरा करने के कारण बूथ पर ऐसे-ऐसे प्रिसाइडिंग या पोलिंग अफसर नियुक्त करने पड़ते हैं, जिन्हें पैसा, डंडा, प्रभाव के बल पर हतप्रभ कर बोगस मतदान किया जाता है।

चुनाव में भ्रष्टाचार

चुनाव में खर्च की ही बात ले लीजिये। चुनाव का खर्च दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ रहा है। और ऐसे मामलों की खबरें छपी हैं, जिनमें कहा गया है कि विधानसभा के सिर्फ एक प्रत्याशी ने ३० से ४० लाख के बीच और लोकसभा के प्रत्याशी ने ६० से ९० लाख तक खर्च किया है। लेकिन यदि औसत खर्च इस चकरानेवाली राशियों का १।१० भी हो तो गरीबों की पार्टी या उनके प्रत्याशी के लिए तो कोई अवसर ही नहीं है, और न तो इतनी बड़ी राशि खर्च कर सकनेवाले प्रत्याशियों से यह उम्मीद ही रखी जा सकती है कि वे गरीबों के लिए काम करेंगे। उसी तरह गुप्त पैसों पर पनपनेवाला जाल-फरेब व छल-छद्म तथा सशक्त राजनीतिक व जातिगत स्वार्थों की शह पर होनेवाले बल-प्रयोग चौंकानेवाले ढंग से बढ़ रहे हैं। चुनाव-अधिकारियों को डराने-धमकाने व इन्हें पैसे से खरीद लेने में सामान्यतः निहित चुनाव-मशीन का भ्रष्टाचार अन्य क्षेत्रों के भ्रष्टाचार के साथ तेजी से बढ़ रहा है।

करोड़ों रुपया वे चुनाव पर खर्च करेंगे। एक तरफ 'गरीबी हटाओ' का नारा लगायेंगे, समाजवाद का नारा लगायेंगे और यह सब रुपया ब्लैक मार्केटियर लोगों से आप इकट्ठा करेंगे—'अनएकाउन्टेड मनी', करोड़ों रुपया, जिसका कोई हिसाब नहीं, पार्टी की किताब में। हिसाब की किताबों में

कहीं उसकी एंट्री नहीं। कैसे वह खर्च हुआ, किसने वह खर्च किया—कुछ मालूम नहीं। इस करप्शन की जड़ पर प्रहार होना चाहिए। आज से नहीं, बरसों से मैं पुकार रहा हूँ कि भाई, इस चुनाव की पद्धति में आमूल परिवर्तन होना चाहिए, चुनाव का खर्च कम करना चाहिए—अगर चाहते हैं आप, कि गरीब उम्मीद-वार खड़ा हो सके, मजदूर उम्मीदवार खड़ा हो सके, किसान उम्मीदवार खड़ा हो सके, गरीब पार्टी—जो गरीबों की पार्टी है, वह अपने उम्मीदवार खड़ा कर सके। सुनता है कोई ? वह भी जल्दी-जल्दी कुछ कर लेंगे, और ऐसे सुधार कर लेंगे, जिनसे उनका ही और फायदा हो पाये। लेकिन ये बातें तो सबके सामने हैं। आज से नहीं हैं, बरसों से हैं।

अमरनाथ चावला केस के अपने फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह चेतावनी दी है कि यदि उम्मीदवार खड़ा करनेवाले राज-नीतिक दलों को मनमाने ढंग से खर्च करने की छूट मिलतो है तो चुनाव-खर्च पर प्रतिबंध लगाने के लिए बने कानूनों का उद्देश्य ही विफल हो जायगा। उम्मीदवारों के चयन की प्रक्रिया में अधिकतम जन-सहयोग की आवश्यकता पर भी सर्वोच्च न्यायालय ने बल दिया। पिछले कई सालों से मैं भी यही बात करता रहा हूँ। आज राजनीतिक दल अपने-अपने उम्मीदवार जनता पर थोपते रहे हैं, उसके बजाय यदि आमसभाएँ, अथवा वर्तमान आन्दोलन के संदर्भ में छात्र एवं जन-संघर्ष-समितियाँ, लोक-उम्मीदवार खड़ा करती हैं तो वह ज्यादा लोकतान्त्रिक प्रक्रिया होगी और साथ ही चुनाव-खर्च में भी भारी कमी होगी। लेकिन आज तक मुझे आदर्शवादी करार कर इस सुझाव की उपेक्षा की जाती रही है। अब यह स्वप्नदर्शी जयप्रकाश नहीं, यथार्थदर्शी सर्वोच्च न्यायालय कह रहा है।

इसके बाद एक अध्यादेश निकला है, जिससे सरकार के इरादे

बिलकुल जाहिर हो जाते हैं। इस अध्यादेश से सर्वोच्च न्यायालय का हाल का वह निर्णय व्यर्थ हो जाता है, जिसका उद्देश्य चुनाव-कानून में निर्धारित परिसीमा के अन्दर चुनाव-खर्च को रखकर, राजनीतिक दलों को अपने उम्मीदवारों के निर्वाचन के लिए बड़ी-बड़ी रकमें खर्च करने से रोकना है। इससे एक बार फिर यह साफ हो जाता है कि सत्ताधारी कांग्रेस दल लोकतान्त्रिक ढंग से काम करने का मुखौटा तभी तक कायम रखता है, जब तक उसके सत्ता के अधिकार पर आँच न आती हो। लेकिन ज्यों ही लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को भ्रष्ट करने की उसकी क्षमता पर रोक लगाने की कोशिश होती है, उसका असली रंग प्रकट हो जाता है।

स्वराज्य के बाद हर चुनाव जनता की दृष्टि से एवं लोकतन्त्र की दृष्टि से उत्तरोत्तर अप्रस्तुत हो रहा है। पैसा, असत्य, भ्रष्टाचार एवं शारीरिक बल-प्रयोग के कारण चुनाव का अर्थ एवं आशय ही समाप्त होता जा रहा है। चुनाव में खर्च बेतहाशा बढ़ रहा है।

लोकतंत्र जो अपने देश में है उसमें देश की जनता को एक-मात्र अधिकार इतना ही है कि जनता अपना मतदान करे, जब-जब चुनाव आये। बस, इसके अलावे और कोई उनका स्थान नहीं है, हमारा-आपका नागरिक की हैसियत से। वह अधिकार भी हमारा छिन रहा है इसलिए कि चुनाव न स्वतन्त्र है और न ईमानदारी से होते हैं, न फेयर हैं, न फ्री हैं।

सर्वप्रथम तो हमारा चुनाव-कानून ही अपूर्ण और भ्रष्टाचार की संभावनाओं से भरा हुआ है, इसमें बदलाव की बात वर्षों से कही जा रही है, पर केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी ने कभी भी इस प्रश्न पर कुछ करने की आवश्यकता नहीं समझी।

लोकतन्त्र का नाटक

आज जो लोकतन्त्र है और जिस तरह वह चल रहा है (उसे देखते हुए) यह कहना पड़ता है कि यह सिर्फ लोकतन्त्र का ढाँचा है। इसके अन्दर न जान है, न खून है, न मांस है, हड्डी ही हड्डी है। एक संविधान है, कानून है, बस, इतना ही है। देखिये न बिहार में मिनिस्ट्री की बात चल रही है। संविधान क्या कहता है ? इसके अनुसार राज्य को जो स्वायत्तता है उनकी रोशनी में होना तो यह चाहिए था कि जो बहुमतवाली पार्टी है उसके सदस्य एम० एल० ए० इकट्ठे होकर अपना नेता खुद चुन लें। लेकिन यह होता ही नहीं। ऊपर से कोई लीडर चुन लिया जाता है, वह मुख्यमन्त्री बन जाता है। फिर उसे कहा जाता है कि किस-किसको मंत्री वह बनाये। यह होता है। यह तो लोकतन्त्र को मजबूत करनेवाली बात हरगिज नहीं हुई। इससे तो लोकतन्त्र कमजोर होगा। इस हालत की सबसे ज्यादा जिम्मेदारी इंदिराजी की है। जवाहरलालजी के वक्त में भी उनके पास लोग जाते थे। उनसे पूछते थे। लेकिन ऐसा नहीं होता था कि मुख्यमन्त्री वहाँ से मनोनीत कर दिया जाय। वह थोड़ी-बहुत राय दिया करते थे और लोग आपस में मिलकर राय-विचार किया करते थे। आज भी बिहार के एम० एल० ए० चाहते हैं कि मीटिंग करके अपना लीडर चुनें। लेकिन दिल्लीवाले राजी नहीं।

दूसरी चीज पार्टी है। उसके अन्दर भी लोकतांत्रिक पद्धति होनी चाहिए, यदि वह लोकतन्त्र में विश्वास करती है। लेकिन वहाँ भी वही हाल है। अध्यक्ष कौन होगा, यह भी दिल्ली से तय होता है। मुझे राजनैतिक दलों से कोई चिढ़ नहीं है, उन सबका वर्तमान लोकतन्त्र में अपना स्थान है। परन्तु आज जो राजनैतिक दल सत्ता में हैं, वे सत्ता में ही बने रहने के और जो सत्ता में नहीं

हैं वे सत्ता प्राप्त करने के ही आकांक्षी हैं। दलों के नेताओं के भी अपने-अपने स्वार्थ होते हैं। मुझे नहीं मालूम कि देश में ऐसा भी कोई दल है, जो पक्षपात और भ्रष्टाचार आदि की बुराइयों से मुक्त हो। बिहार में लगभग सभी राजनीतिक दलों के मंत्रिमण्डलों को आजमाया जा चुका है और चूँकि उसका सबक ताजा है इसलिए उसे आज के छात्र भी भूले नहीं होंगे।

ऐसी कोई पार्टी है, जो छाती पर हाथ रखकर कह सकती है कि हमारी पार्टी में भ्रष्टाचार नहीं है, चुनाव में भ्रष्टाचार हमारी पार्टी नहीं करती है या हमें ब्लैकमनी नहीं मिलता ? जो सत्ता में हैं उनको ज्यादा मिलता होगा, जो सत्ता में नहीं हैं उनको कम मिलता होगा।

चुनाव-पद्धति दोषपूर्ण

तीसरी बात, अब चुनाव के परिणामों को ही ले लीजिये। उत्तर प्रदेश में हाल के चुनावों में कुल ५० फीसदी से कम लोग वोट देने नहीं गये। लेकिन जो वोट देने गये उनमें से लगभग ३२ फीसदी लोगों ने कांग्रेस को वोट दिया और ६८ फीसदी लोगों ने कांग्रेस के विरुद्ध वोट दिया। ३२ फीसदी वोट पाकर के उनकी हुकूमत बन गयी। ६८ फीसदी के वोट बेकार, जाया हो गये। तो जनता तो कहेगी, मतदाता तो कहेगा कि 'क्या हैं ये चुनाव ? इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता ? यही होता रहेगा ? हमारी राय ली जाती है तो १०० में से ६८ फीसदी की राय तो खिलाफ थी। उसका तो कोई परिणाम निकला नहीं।'

तो यह तो लोकतंत्र की विफलता हुई। लोकतन्त्र जिस प्रकार का अपने देश में चल रहा उससे भी हम आशा नहीं कर सकते हैं कि यों स्वस्थ रीति से काम करेगा, न जनता का प्रति-

निधित्व हो सकेगा। और न यह ही संभव है कि जब तक फिर आम चुनाव हो जनता दुःख सहती रहे, कष्ट सहती रहे, रुदन करती रहे।

विकल्प की आवश्यकता

चुनाव की यही पद्धति रही तो क्या होगा? वही दल उन्हीं उम्मीदवारों को खड़ा करेंगे और उन्हीं उम्मीदवारों में से किसी एक का हम लोगों को चुनाव करना होगा। आजकल मतदाता लोग तंग आ गये हैं। इसलिए सिर्फ ५० प्रतिशत या उससे कम मतदाता मत देने जाते हैं। इस हालत में चुनाव होगा, तो एक पक्ष के स्थान पर दूसरा पक्ष आयेगा। सभी पक्षों का अनुभव हम लोग ले चुके हैं। इसलिए अगर चुनाव की यही पद्धति रही तो उसमें से कौन-सी क्रान्ति होनेवाली है? एक मन्त्रिमण्डल की जगह दूसरा मन्त्रिमण्डल, और आज के विधायकों की जगह दूसरे विधायक आयेंगे तो क्या फर्क पड़नेवाला है? मैं आपसे कहता हूँ कि सारी दुनिया में जहाँ-जहाँ प्रतिनिधि-लोकतन्त्र है, चाहे वह संसदीय हो या प्रेसिडेन्टल हो, राष्ट्रपति-शासित हो, सबमें यही दोष है। चर्चिल ने कहा कि लोकतन्त्र में बहुत दोष हैं, लेकिन इससे अच्छा विकल्प कोई नहीं है।

हाइएस्ट कमांड जनता की होनी चाहिए

क्या भारत इसका विकल्प पेश कर सकता है? लेकिन यह आज का विषय नहीं है। आज के लोकतन्त्र को वास्तविक लोकतन्त्र बनाने के लिए मैंने एक रूपरेखा पेश की है। पू० रविशंकर महाराज और विनोबाजी भी कहते हैं कि जनता अपना उम्मीदवार खड़ा करे। आज तो जनता नहीं, किन्तु पक्षों के हाइकमाण्ड उम्मीदवार खड़ा करते हैं। हर पार्टी का एक-चौथाई हाइकमाण्ड यहाँ है और तीन-चौथाई दिल्ली में है। वास्तव में

हाइकमाण्ड कौन होना चाहिए, जनता या दिल्लीवाले ? लोकतन्त्र में हाइएस्ट कमाण्ड जनता ही होनी चाहिए। लेकिन उसको तो कोई पूछता भी नहीं है। वोट दे दीजिये, चाहे जिसको दे दीजिये, नहीं देना है तो मत दीजिये। अकाल के समय कोई खबर लेने नहीं गया, उसके विरोधस्वरूप साबरकांठा जिले के दो गाँवों ने मतदान का बहिष्कार किया। यह एक बहुत बड़ा प्रतीकात्मक प्रतिकार है। ऐसा प्रतिकार लोकतन्त्र को वास्तविक बनाने के लिए आवश्यक है।

हमारे प्रतिनिधि यहाँ से गये हैं उन पर हमारा विश्वास नहीं रह गया तो 'वापस आइये', हम दूसरे को भेजेंगे। क्या यह लोकतन्त्र नहीं हुआ ? लोकतन्त्र के विरुद्ध हुआ यह ? जिसको जनता चाहती नहीं है वह कुर्सी पर बैठा रहे, तो क्या यह लोकतन्त्र है ? तन्त्र ही तन्त्र है, लोक का कहीं पता ही नहीं लगता है।

तन्त्र तो बहुत है। इतना जाल है शासन का कि उसमें से समझ में ही नहीं आता कि कैसे निकला जाय। गांधीजी ने कहा कि वह शासन सबसे अच्छा शासन है, जो कम-से-कम शासन करता है। अब तो शासन चाहे समाजवाद के नाम पर हो या किसी भी वाद के नाम पर, ऐसा शासन बनता जा रहा है, जिसमें सब कुछ शासन ही करे। कल को शादी-ब्याह भी लड़के-लड़कियों के शासन की ओर से तय होंगे। शायद, ऐसी परिस्थिति आ जायगी कि हमारे घरेलू मामलों में भी शासन हस्तक्षेप करेगा। जीवन के कितने पहलुओं पर आज भी उसका असर होता जा रहा है। तो एक दिशा हमारी गलत होती जा रही है। इस दिशा को बदलना है—स्वस्थ रीति से, शान्तिमय तरीके से, जनता की शक्ति से, हुल्लड़बाजी और गुंडेबाजी से नहीं, जनता के मत का प्रदर्शन करके, जनता की शक्ति का प्रदर्शन करके, संगठित रूप से।

दल-विहीन लोकतन्त्र तो मार्क्सवाद तथा लेनिनवाद के मूल उद्देश्यों में से है, यद्यपि वह उद्देश्य दूर का है। मार्क्सवाद के अनुसार समाज जैसे-जैसे साम्यवाद की ओर बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे राज्य (स्टेट) का क्षय होता जायगा—और अन्त में 'स्टेट-लेस सोसायटी' कायम होगी। वह समाज अवश्य ही लोकतान्त्रिक होगा, बल्कि उसी समाज में लोकतन्त्र का सच्चा स्वरूप प्रकट होगा और वह लोकतन्त्र निश्चय ही दल-विहीन होगा। जब स्टेटलेस सोसायटी—शासन-मुक्त समाज—बन जाता है तो वह शायद ही दल-युक्त होगा। आश्चर्य है कि कम्युनिस्ट बन्धुओं को अपने इस मूल सिद्धान्त का विस्मरण हो गया है।

जहाँ तक वर्तमान आन्दोलन का प्रश्न है, मेरी या अन्य किसीकी—न छात्रों की, न किसी राजनीतिक दलों की, न सर्वोदय-सेवकों की—यह कल्पना है कि इसमें से दल-विहीन लोकतन्त्र पैदा होगा, न मैंने आन्दोलन के संदर्भ में इसका जिक्र ही किया है। विधानसभा का जब विघटन हो जायगा तो छः महीने या वर्षभर में फिर चुनाव होंगे, जो वर्तमान कानून और चुनाव-प्रणाली के अनुसार होंगे, यह मैंने कहा था।

वर्तमान कानून और चुनाव-प्रणाली अत्यन्त ही दोषपूर्ण है और जितनी ही जल्द चुनाव के कानून में, रीति-नीति में परिवर्तन होंगे, उतना ही हमारे लोकतन्त्र और देश के लिए श्रेयस्कर होगा। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि दिल्ली के सत्ताधारी इस प्रकार के सुधार निकट भविष्य में नहीं करनेवाले हैं। जब तक कि देश-व्यापी जनमत का दबाव उन पर नहीं पड़ता, तब तक वे ऐसा कुछ नहीं करेंगे।

चुनाव-प्रक्रिया में मतदाता का पार्टीसिपेशन

पक्ष और सत्ता की राजनीति मैंने छोड़ी है, क्योंकि मेरे

ख्याल से उससे कुछ बननेवाला नहीं है। मुझे कैप्चर ऑफ पावर में नहीं, जनता द्वारा कन्ट्रोल ऑफ पावर में रुचि है। उससे कुछ बनेगा भी तो वानर बनेगा, विनायक नहीं। मुझे भरोसा है कि लोगों की राजनीति से--लोकनीति से--विनायक बनेगा और जरूर बनेगा। इसे हम और आप बनायेंगे। देश की जनता बनायेगी। भारत के तरुण बनायेंगे। आशा के ये मादक घूँट यदि मैं नित्यप्रति पीता न होता तो आज उम्र की इस अवस्था में रणक्षेत्र में खड़ा न होता, कहीं जाकर आराम से बैठ गया होता। तो आज की राजनीति को जागृत जनता के बल पर कैसे बदला जाय ?

प्रदेश के छात्र, युवक और सर्वसाधारण जनता जागृत हो गयी है, वह आगे बढ़ रही है और कुछ नया चाहती है, वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन चाहती है। अतः इस परिस्थिति का लाभ उठाकर मैं चाहूँगा कि आज जो असंगठित जनता है उसमें ऐसी शक्ति आ जाय, ऐसा मतदाताओं का संगठन बन जाय कि वह सही आदमी का चुनाव कर सके तथा चुनाव के बाद अपने प्रतिनिधियों के आचरण पर यथासम्भव अंकुश रख सके। इस सम्बन्ध में मेरे कुछ सुझाव हैं। एक तो यह है कि विधान-सभा का अगला चुनाव हो तो हमारी छात्र-संघर्ष तथा जन-संघर्ष-समितियाँ मिल करके आम राय से अपना उम्मीदवार खड़ा करें अथवा जो उम्मीदवार खड़े किये जायँ उनमें से किसीको एन्डोर्स करें, मान्य करें। यदि इन समितियों के बीच आम राय नहीं होती है तो हम कोई ऐसा रास्ता बतायेंगे, जिससे आपस में फूट हुए बगैर ये समितियाँ अपना उम्मीदवार खड़ा कर सकेंगी या किसी एक उम्मीदवार को अपनी मान्यता दे सकेंगी। इस प्रकार के चुनाव में जनता का एक बहुत बड़ा पार्ट होगा, याने जनता और छात्रों की संघर्ष-समितियाँ

उम्मीदवार के चयन में अपना महत्त्वपूर्ण रोल अदा करेंगी। दूसरी बात जो मैं कह रहा हूँ वह यह है कि जो भी उम्मीदवार अमुक चुनाव-क्षेत्र से जीतेगा, उसके भावी कार्यक्रमों पर कड़ी निगरानी रखने का काम ये संघर्ष-समितियाँ करेंगी और अगर उस क्षेत्र का प्रतिनिधि गलत रास्ता पकड़ता है तो उनको इस्तीफा देने के लिए बाध्य करेंगी। इस प्रकार जनता का अंकुश इन लोगों के ऊपर होगा और आज की तरह उच्छृङ्खल, आज की तरह निरंकुश और स्वच्छन्द वे नहीं रह पायेंगे।

मतदाताओं को कैसे संगठित किया जाय ?

आज जितना लोकतन्त्र है उसमें जनता का स्थान बहुत ही छोटा है। इतना केवल है कि जब चुनाव होंगे, निर्वाचन होगा तो मतदान की पेटी में लोग जा करके अपना मतदान-पत्र डाल देंगे। बस। न उम्मीदवार के चयन में, जो चुनकर उनका प्रतिनिधि बनकर गया है, न उसके ऊपर कोई अंकुश या नियन्त्रण रखने में, न उससे कोई लेखा-जोखा माँगने में जनता का कोई अधिकार है। जनता के प्रतिनिधि हैं, लेकिन जनता का कोई अंकुश नहीं। यह दूर होना चाहिए और मैं उम्मीद करता हूँ कि इस संघर्ष के द्वारा यह दूर होगा। अगर जनता आपको नहीं चाहती तो इस पद पर आपको रहने का क्या अधिकार है? आज के लोकतन्त्र में सबसे बड़ा दोष यह है कि अपने प्रतिनिधि के लिए उम्मीदवार खड़ा करना और उसका नियन्त्रण रखना जनता के हाथ में नहीं है।

लोकतन्त्र में हकीकत तो आज यह है कि 'सर्वसत्ता-सम्पन्न शीर्ष' की ओर से 'शक्ति-शून्य बुनियाद' की ओर सत्ता प्रवाहित है। हमारा लोकतन्त्र बहुत संकुचित आधार पर टिका हुआ है। यह एक ऐसे उल्टे पिरामिड की तरह है, जो सिर के बल खड़ा है।

इसलिए इस प्रकार की आज की व्यवस्था को बुनियाद से ही बदलने का मैं हिमायती हूँ। केवल यह तथ्य कि हर बालिग भारतीय को वोट देने का हक है, शासन-पद्धति के पिरामिड को व्यापक आधार नहीं दे देता। करोड़ों की संख्या में बिखरे हुए व्यक्तिगत मतदाता बालुका-कणों के ऐसे ढेर की तरह हैं, जो किसी भी संरचना की बुनियाद नहीं बन सकते। इन बालुका-कणों को तो ईंट या कंकरीट में रूपान्तरित करके ही इनसे किसी भवन के स्तम्भों का निर्माण किया जा सकता है। इसके लिए लोग जहाँ एक साथ रहते हैं, जहाँ उनके जीवन की हलचल साथ-साथ होती है, ऐसी जीवन्त इकाइयों में जाकर लोकशक्ति बनानी पड़ेगी। ये इकाइयाँ बालू के ढेर या भीड़ जैसी न हों, बल्कि एक 'आर्गेनिक मास' हो, जीवन्त समूह हो, परस्परावलम्बित समूह हो। और भारत में तो अभी ८२ प्रतिशत लोग ऐसे प्रत्यक्ष समाज में (गाँवों में) ही बसते हैं, जिनकी आँखों में लाज-शर्म शेष है। इन गाँवों की शक्ति जगाकर उससे ही उनकी समस्याएँ सुलझानी हैं। आज यह शक्ति कुंठित है, सुषुप्त है। उसे जागृत करना है, सुसंगठित करना है। गाँव-गाँव में ग्रामसभाएँ बनानी होंगी, हर पोलिंग बूथ पर मतदाताओं का मतदाता मंडल बनाना होगा। यह पहला काम है।

दूसरी बात थी ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मंडल की। मान लीजिये, एक चुनाव-क्षेत्र में १०० ग्रामसभाएँ हैं। प्रत्येक ग्रामसभा अपनी जनसंख्या के अनुपात में १, २, ३ या ४ प्रतिनिधि पसन्द करती है, इस प्रकार १०० गाँवों में से ३०० प्रतिनिधि गाँव के लोगों ने पसन्द किये। वे लोग किसी पक्ष के नहीं होंगे। इन सब प्रतिनिधियों को मिलाकर एक ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मण्डल बनेगा और यह मण्डल अपने चुनाव-क्षेत्र के लिए एक लोक-उम्मीदवार को पसन्द करेगा। गुजरात में रविशंकर महाराज ने

सुझाया कि एक मारल हाइकमाण्ड, नैतिक उच्च सत्ता, की ओर से उम्मीदवार पसन्द किये जायेंगे। चुनाव-क्षेत्र के भले सेवक लोग होंगे, उनको बुलाकर पूछेंगे। चयन चाहे ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मण्डल करे, या संघर्ष-समितियाँ करें या नैतिक हाइकमाण्ड करे—उम्मीदवार ईमानदार एवं गरीबों की सेवा करनेवाले हैं यह तो देखना ही पड़ेगा।

उम्मीदवार पसन्द करने के लिए भी एक पद्धति यह प्रतिनिधि-मंडल अपना सकता है। यथासंभव सर्वानुमति से ही वह किसी एक को पसन्द करेगा। वह भी नहीं हो सका तो प्रोसेस ऑफ एलीमिनेशन की प्रक्रिया से पसन्द करेगा। उदाहरणार्थ, ४-५ आदमी उम्मीदवारी के लिए खड़े हैं, तो ३-४ बार मतदान कराकर जिसको सबसे कम मत मिले उसको छाँटते जाना चाहिए। अन्त में जो रहा उसीको नियुक्त किया जाय। समान मत दो आदमियों को मिले तो चिट्ठी डालकर निर्णय किया जा सकता है। इस ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मंडल का भी ५ साल कार्यकाल रहेगा और विधायक उसके प्रति जिम्मेदार रहेगा।

हम लोगों को सोचना चाहिए कि यह दलीय पद्धति क्यों आयी ? एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह आयी थी, लोकतंत्र के लिए पक्ष-पद्धति अनिवार्य है ऐसा सोचकर। जान-बूझकर इसको किसीने नहीं बनाया। यह संसदीय जनतन्त्र मतदाता पर आधारित है और मतदाता हैं बालू के कण की तरह बिखरे हुए। इसलिए दल आया। किन्तु अगर आपके मतदाता संगठित हो जाते हैं, मतदाता-परिषद् ठीक से काम करने लग जाती है तो पार्टियों की आवश्यकता नहीं रहेगी। विधायक मतदाता परिषद् के प्रति जिम्मेवार रहेगा और मतदाता-परिषद् ५ साल तक कायम रहेगी। विधायक अपने काम की रिपोर्ट नियमित ढंग से परिषद् को देता रहेगा। परिषद् विधायक के लिए आम-

सभाओं का आयोजन करेगी और इस प्रकार मतदाता और विधायकों का सम्पर्क कायम रहेगा। मान लीजिये, किसी विधायक के खिलाफ भ्रष्टाचार का आक्षेप हुआ है तो मतदाता और मतदाता-परिषद् उसको जवाब तलब करेगी। जरूरत महसूस हुई तो उसको विधानसभा से इस्तीफा देने के लिए भी कहेगी। विधायक उस पर अमल नहीं करता है तो उसका सामाजिक बहिष्कार किया जायगा और अन्य अहिंसक उपाय भी किये जायेंगे। जाति और वर्ग-भावना से ऊपर उठकर, लोकतन्त्र में जनता के अधिकारों और कर्तव्यों के जागरूक प्रहरी के रूप में काम करनेवाले निर्दलीय व्यक्ति आन्दोलन की भाषा में संघर्ष-समितियों के सदस्य हों। प्रत्येक मतदान-केन्द्र की जन-समितियाँ आम राय से चुना हुआ अपना एक-एक प्रतिनिधि विधानसभा निर्वाचन-समिति के लिए भेजें। सामान्यतः एक निर्वाचन-क्षेत्र में १००० मतदान-केन्द्र होते हैं। इस आधार पर प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में १००० जन-समितियाँ होंगी एवं एक विधानसभा निर्वाचन-समिति होगी।

इस प्रकार की किसी निर्दलीय स्थायी समिति के बगैर हमारे लोकतन्त्र की वर्तमान दलीय पद्धति न तो सच्चे प्रातिनिधिक लोकतन्त्र की गारण्टी दे सकती है और न जनाकांक्षा के अनुसार लोकतन्त्र चल सकता है। प्रत्येक मतदान-केन्द्र की जन-समितियों में उन क्षेत्रों के युवकों और विद्यार्थियों का प्रतिनिधित्व हो सकता है। उन्हें पचास प्रतिशत प्रतिनिधित्व भी दिया जा सकता है। ये जन-समितियाँ किसी भी दल के पक्ष या विपक्ष में नहीं होंगी, चाहे वे विरोधी दल हों या शासकीय हल हों। वे सिर्फ जन-समर्थक होंगी। ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मंडल या संघर्ष-समितियों की विधानसभा निर्वाचन-समिति उम्मीदवार का चयन करे एवं अपने प्रतिनिधि पर अंकुश रखे—इस दोहरे नियन्त्रण के

फलस्वरूप आज के ही ढाँचे में हम दो कदम आगे बढ़ते हैं और जनता का भी सक्रिय योगदान—पार्टीसिपेशन–बढ़ता है।

चुनाव आते-आते यह सारा उत्साह ठप हो गया, ठंडा पड़ गया, जोश निकल गया तो फिर क्या होगा? और अगर जोश कायम रहा और इस चुनाव में अच्छा परिणाम हुआ तो भी पाँच वर्ष के बाद क्या होगा? '५२ में जो उत्साह था आज वह देखने में आता है कहीं? वह जो वातावरण था '४७ का, '५२ का, वह आज देखने में आता है? उसके लिए क्या इलाज है आपके पास? इसलिए मतदाता-परिषद् या निर्वाचन-समिति की जरूरत है। यह मतदाता-परिषद् या निर्वाचन-समिति वाचडॉग का काम करेगी। उनका नियन्त्रण रहेगा। उनसे यह माँग करेगी ये समितियाँ कि हर विधानसभा-सत्र की समाप्ति के बाद, अगर बीच में हो सके तो बीच में, विधायक से कहेगी कि आप आइये, हमें रिपोर्ट दीजिये। अगर आप किसी पार्टी में हैं तो ठीक है, उसका भी व्हिप सुनिये। लेकिन हमारा जो व्हिप है वह भी आप ध्यान में रखिये। यद्यपि आपके दलीय नेता (यदि आप दल के हों तो) के प्रति आपकी वफादारी हो सकती है, परन्तु जनता के प्रति आपकी वफादारी का स्थान आपकी दलीय वफादारी से ऊपर होना चाहिए। हमारे भी आप प्रतिनिधि हैं। आप वहाँ स्वार्थ में और पद-लोलुपता में मत फँसिये। अगर आप फँसेंगे तो राइट ऑफ रिकाल संविधान में हो या न हो, अपने प्रतिनिधि को वापस बुलाने का कानूनी अधिकार हो या नहीं, वैधानिक या संवैधानिक हो या नहीं, यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हम ऐसी परिस्थिति पैदा कर देंगे कि आपका जीना दुर्लभ हो जायगा।

यह असेम्बली विघटित हो जायगी तो उसके बाद क्या होगा? प्रथा यही है लोकतन्त्र की कि ये ही पार्टियाँ हैं, इनको

पसन्द करो, न पसन्द करो। तो, विधानसभा के विघटन से संभावना तो यही है कि वर्तमान क़ानून तथा नियम आदि के अन्तर्गत ही पुनर्निर्वाचन होगा। इसलिए प्रश्न उठता है, जैसा कि पिछले सप्ताहों में कई बार उठा भी है, कि उस हालत में विधानसभा के विघटन से क्या लाभ होगा ? मुझे खेद है कि इसका उत्तर पिछले दिनों में मैंने बार-बार दिया है। पर उसको समझने की कोशिश थोड़े ही लोगों ने की है। बार-बार मुझसे यह सवाल होता है कि जयप्रकाश नारायण वर्तमान चुनाव-पद्धति और विधानसभा के चुनाव का कौन-सा विकल्प पेश कर रहे हैं ? यह विकल्प चूँकि नये ढंग का है, जो घिसे-पिटे राजनीतिक चिन्तन से भिन्न है, इसलिए वह लोगों की समझ में नहीं आता। अगर मैं यह कह दूँ कि मेरा विकल्प यह है कि मैं इस आन्दोलन और संघर्ष में से एक नयी पार्टी का निर्माण करूँगा तो सब लोग मेरी बात आसानी से समझ लेंगे। और उसके बाद मेरी आलोचना शुरू हो जायगी कि यह आदमी केवल अपनी सत्ता के लिए छात्रों और जनता के आन्दोलन का दुरुपयोग कर रहा है। लेकिन नयी पार्टी बनाना तो जिस गड्ढे में, रेत में हम पड़े हुए हैं, उसीमें फिर गिरना है। लेकिन जब मैं कोई नयी बात कहता हूँ तो उसको समझने की कोशिश कम होती है या होती ही नहीं। तो, क्या है मेरा कहना ? संक्षेप में यह है कि आज की परिस्थिति में आम जनता को, आम मतदाता को केवल इतना ही अधिकार प्राप्त है कि वह चुनाव में अपना मतदान करे। परन्तु मतदान-प्रक्रिया न तो स्वच्छ और स्वतन्त्र (फ्री एंड फेअर) होती है, न उम्मीदवारों के चयन में मतदाताओं का हाथ होता है, और न चुनाव के बाद अपने प्रतिनिधियों पर उनका कोई अंकुश ही रहता है। मैं ऊपर कहे हुए विकल्प द्वारा इन दोनों कमियों को दूर करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

आलोचक यही जानते हैं कि राज्य-व्यवस्था को या तो बल-प्रयोग से समाप्त किया जाय या उसकी बुनियादी स्थिरता को धक्का लगाये बिना उसका अन्दर से सुधार किया जाय। पश्चिमी राजनीति-शास्त्र को ये दो ही पर्याय मालूम हैं। इस विश्लेषण के चौखटे में गांधी फिट नहीं बैठता था। उन्होंने एक नया ही शस्त्र ईजाद किया। मानव की अच्छाई में मेरे विश्वास का आलोचकों ने मजाक-सा उड़ाया है। यह विश्वास ही गांधी-जी के सत्याग्रह की बुनियाद थी। इसी विश्वास के कारण विनोबा को भूमिवानों से भूमिहीनों में बाँटने के लिए, भूमि-सुधार कानूनों द्वारा राज्य-सरकारों को जितनी भूमि मिली उससे कहीं अधिक भूमि मिली और बाँटी गयी। दल एवं सत्ता की राज-नीति से अलग मेरी प्रवृत्ति का आलोचकों के लिए कोई मानी नहीं। यदि मैं किसी दल में जा शामिल होता हूँ या नया दल बनाता हूँ तो कुहरा साफ हो जायगा और मैं किसके लिए आन्दो-लन कर रहा हूँ यह समझने में दिक्कत नहीं होगी! गांधी ऐसा नहीं सोचता था। १९३४ से ही गांधी ने कांग्रेस की सदस्यता छोड़ दी थी और स्वराज्य के बाद की सरकार में प्रमुख भी नहीं बने। बल्कि कांग्रेस का विसर्जन कर लोकसेवक संघ बनाने की बात कही। १९३० में गांधी ने कहा था कि यदि स्वराज्य के बाद मैं जीवित रहा तो मुझे मेरे देशवासियों के साथ स्वराज्य के लिए संघर्ष जैसी ही लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी। गांधी का विचार एवं कृति समाप्त नहीं हुई है। यद्यपि गांधीजी के पैर की धूलि-कण के बराबर ही मैं हूँ, तो भी बीसवीं सदी के इस सबसे महान् मार्गशोधक के रास्ते पर चलने की आलोचक मुझे अनुज्ञा दें।

लोकतन्त्र में तन्त्र ही नहीं, लोक भी है

लोकतन्त्र में दो शब्द हैं। एक 'लोक' है, एक 'तन्त्र' है। लोकतन्त्र में केवल तन्त्र ही तन्त्र रह जाय और 'लोक' न रह

जाय तो लोकतन्त्र होगा ? क्या होगा वह ? एक पार्टी की 'डिक्टेटरी' होगी। वह लोकतन्त्र तो नहीं होगा। जिन लोगों ने अपने प्रतिनिधियों को चुन करके भेजा है वे लोग असन्तुष्ट हो जायँ उनसे, तो उनको बराबर अधिकार है यह कहने का, कानून में, संविधान में इसका प्रावधान हो या न हो, फिर भी जनता का जन्मसिद्ध अधिकार है अपने प्रतिनिधि को कहने के लिए कि हमने तुमको विधानसभा या लोकसभा में बेईमानी करने के लिए, गद्दारी करने के लिए और चोरी करने के लिए नहीं भेजा था। काहे के लिए भेजा था ? सेवा करने के लिए, वफादारी से, ईमानदारी से बरतने के लिए। वहाँ जनसेवा करने गये थे कि अपनी जेब भरने गये थे ? जेब सेवा, अपनी पाकेट सेवा करने गये थे तुम ? जनता को बराबर यह अधिकार है अपने प्रतिनिधि को वापस बुलाने का। संविधान का कानून जो लिखा हुआ है, 'लेटर ऑफ दि लॉ' उसकी एक आत्मा है। उसको भूल जाओगे तो 'लेटर ऑफ दि लॉ' तो कुछ भी नहीं है। वह तो अन्याय हो जायगा।

जनता का मूलभूत अधिकार—राइट ऑफ रिकॉल

आपका जो आज का शासन है, प्रशासन है, उससे आपको संतोष नहीं है। तो पाँच वर्ष चुपचाप आपको बैठना है ? यही लोकतन्त्र का तकाजा है ? दुनिया के कई संविधानों में जनता को अधिकार रहता है कि जिन लोगों ने चुनकर भेजा है अपने प्रतिनिधियों को, उनसे असंतुष्ट हो जायँ तो उनको वापस बुला लें। अंग्रेजी में राइट ऑफ रिकाल कहते हैं। चूँकि यह भारतीय संविधान में नहीं है इसलिए यह असंवैधानिक है, यह डेमोक्रेसी के खिलाफ है, (ऐसा आलोचक कहते हैं)। तो जनता दुःखी है और पाँच वर्ष तक चुपचाप गूँगे की तरह, असहाय की तरह

तकलीफ सहती रहे? आह भी न करे, चूँ भी न करे? तो क्या उसके सामने दूसरा रास्ता है नहीं? अवश्य रास्ता है।

तो मित्रो, यह रास्ता, यह शक्ति इस संघर्ष में से पैदा होती है, मैं मानता हूँ। यह लोकतन्त्र को मजबूत करने के लिए आजादी की लड़ाई के बाद सबसे बड़ी कोशिश है और सबसे बड़ी लड़ाई है और सबसे बड़ा आन्दोलन है। जब से हमारा लोकतन्त्र कायम हुआ है तब से वह कमजोर होता गया, दुर्बल होता गया। प्राविंशियल ऑटोनॉमी धूल में मिल गयी है, पार्टियों में डेमोक्रेसी धूल में मिल गयी है। तो फिर से लोकतन्त्र को प्रतिष्ठित किया जाय, बलवान् किया जाय।

विघटन की माँग : संवैधानिक

सन् '५७ में जवाहरलालजी नेहरू प्रधानमन्त्री थे, उनकी लड़की इन्दिराजी कांग्रेस की अध्यक्षा थीं और केरल प्रदेश में हमारे मित्र ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद का मंत्रिमंडल था। जनता में विद्रोह हुआ। इंदिराजी का बहुत हाथ था उस विद्रोह में। '५७ में चुनाव हुआ था फरवरी में। पं० जवाहरलालजी नेहरू अपनी बेटी से कहीं ज्यादा बड़े आदमी थे। महापुरुष थे। लोकतन्त्र में सच्चे हृदय से विश्वास करनेवाले थे, जो मैं इंदिराजी के बारे में आज नहीं कह सकता हूँ। जवाहरलाल नेहरू ने ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद की मिनिस्ट्री को, मेरा खयाल है '५९ की जुलाई में बर्खास्त कर दिया। विधानसभा तोड़ दी। उसके बाद चुनाव हुआ। अभी ढाई बरस बाकी थे। गफूर साहब को यह ताजा इतिहास नहीं मालूम है? हमको सबक सिखाते हैं कांस्टिट्यूशन के लिए? जनता क्यों बैठेगी सन् '७७ तक? आपने जनता से जो वादे किये थे वे पूरे नहीं किये हैं। जनता नहीं चाहती है आपको। आप जाइये। इसमें आप कांस्टिट्यूशन की बात करते हैं? अब ए० जी० नूरानी ने विश्वविख्यात संविधान

शास्त्री लार्ड डायसी को उद्धृत किया है—"विघटन की माँग तत्त्वत: एक अपील है कानूनी सर्वोपरि सत्ता (जनता) की ओर से राजनैतिक सर्वोपरि सत्ता (राष्ट्रपति) को।" इसलिए विघटन की यह माँग संवैधानिक है।

आलोचक कहते हैं, जयप्रकाश नारायण लोकतंत्र को कमजोर कर रहा है। कौन लोग लोकतंत्र को आज कमजोर कर रहे हैं? वे लोग, जो लोकतंत्र का केवल तंत्र कायम रखना चाहते हैं। उसका प्रेत, उसका ठट्ठर, उसका कंकाल, वही लोकतंत्र है कि उसमें उसका 'लोक' भी आना चाहिए? यह तो आपने छोड़ दिया है और अपने तंत्र का हवाला देते हो कि ५ वर्ष के लिए चुनाव हुआ विधानसभा का, इतने दिन के लिए रहेंगे, मंत्रिमण्डल इतने दिनों के लिए रहेगा—चाहे जनता जो कहे, चाहे जनता की जो इच्छाएँ हों। लोक की अवहेलना करके लोकतंत्र नहीं चलेगा। आपने देखा न निक्सन का क्या हाल हुआ? यह कोई छोटी घटना इतिहास की नहीं हुई है मित्रो, कि राष्ट्रपति अमेरिका का, जो राष्ट्रपति-पद पर था, जो दुनिया का सबसे शक्तिशाली पद है, अगर उसका कोई मुकाबला कर सकता है तो रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रधानमंत्री का पद। जाना पड़ा न उनको। कैसे? जनमत ने उसको निकाला। सारी रिपब्लिकन पार्टी—उसकी पार्टी—उसके खिलाफ हुई। तो मित्रो, यह लोकतंत्र को मजबूत करना है, कमजोर नहीं करना है। हम मजबूत कर रहे हैं। हमारा यह दावा है।

एक-एक नागरिक को यह कहने का अधिकार है कि विधानसभा विघटित हो और फिर से चुनाव हो। जिस प्रतिनिधि को जनता ने चुनकर भेजा है वह बेईमानी करता है, दलबदल करता है या और कोई कांड करता है तो जनता उसको वापस बुला सकती है। मतदाता स्थानीय रूप से मीटिंग करके प्रस्ताव पास

कर सकते हैं। सभा में अगर बहुत बड़ा मतभेद हो, ५०-६०-४० इस प्रकार लोग आमने-सामने हों तो प्रतिनिधि को शंका का फायदा मिलना चाहिए। लेकिन लगभग सब लोग सर्वसम्मति से कहते हैं तो वह इस्तीफा क्यों नहीं देगा ? संविधान में लिखित अधिकार नहीं है तो क्या हुआ ? प्रतिनिधि का अपने मतदाताओं के प्रति कोई नैतिक उत्तरदायित्व नहीं है ? इसलिए आज की हालत में प्रजा के हित में, राज्य के हित में, सिद्धान्त के हित में और शुद्ध शासन के हित में है कि विधानसभा के विसर्जन की माँग करने का सबको अधिकार हो।

सरकार की दमन-नीति

मैं नहीं जानता हूँ कि अंग्रेजी सरकार के जमाने में भी इस प्रकार का व्यवहार कभी हुआ हो, जैसा विधानसभा-विघटन की माँग करने के लिए जनता के शांतिपूर्ण प्रदर्शनों के साथ किया गया। (लोग) रेलों से उतार दिये गये, बसों से उतार दिये गये। टिकट था उनके पास। डेमोक्रेसी की बात करते हैं ! लोकतंत्र में, डेमोक्रेसी में जनता को अधिकार नहीं है (कि) जहाँ भी चाहें वे शांतिपूर्ण सभा करें अपनी ? जहाँ भी चाहें शांतिपूर्वक प्रदर्शन करें वे ? राज्यपाल के यहाँ जाना हुआ तो लाखों की तायदाद में जायँ ? असेम्बली के सामने जायँ ? उनको पूरा अधिकार है। हिंसा करे कोई, तो दूसरी बात है। एक तो है संगठित हिंसा। दूसरी है असंगठित लूट-मार एवं क्रोध या बहादुरी की गलत कल्पनाओं के कारण पत्थर-बाजी, ढेलाबाजी या इक्के-दुक्के वाहनों को आग लगाना, इस प्रकार की छोटी हिंसा। इन दो में विवेकयुक्त फर्क करना सीखना चाहिए सरकार को। सरकार ऐसा कर रही हो, ऐसा कोई सबूत नहीं है। नतीजा यह होता है कि सच्चे गुनहगार पकड़े नहीं जाते और दूसरे, जिनमें निरपराधियों का

अन्तर्भाव है, मारे जाते हैं। अपनी हिंसा को नियंत्रित रखना सरकार को सीखना चाहिए।

हमसे मिलने आये हुए पुलिस के (एक) उच्चाधिकारी ने कहा कि मैंने दीक्षितजी के मुँह से सुना है, "जयप्रकाश नारायण न होते तो बिहार जल गया होता।" जब जयप्रकाश नारायण के बारे में ऐसा आप सोचते हैं, तो जयप्रकाश नारायण के लिए सारा बल (क्यों होता है)? उनके नेतृत्व में यह प्रदर्शन और यह सभा होनेवाली है, क्यों लोगों को रोकते हैं आप? जनता से घबड़ाते हैं आप? जनता के आप प्रतिनिधि हैं? किसकी तरफ से शासन करने बैठे हैं आप? आपकी यह हिम्मत कि लोगों को पटना आने से रोक लें? उनकी राजधानी है। आपकी राजधानी है? क्या यह पुलिसवालों का देश है? यह जनता का देश है। ऐसी नीचता का व्यवहार! अगर कोई डेमोक्रेसी का दुश्मन है, तो वे लोग दुश्मन हैं, जो जनता के शांतिमय कार्यक्रमों में बाधा डालते हैं, उनकी गिरफ्तारियाँ करते हैं, उन पर लाठी चलाते हैं, गोलियाँ चलाते हैं। इनके आपस में झगड़े होते हैं, दिल्ली जाते हैं—यह काहे के लिए? इस बात के लिए नहीं कि मिनिस्ट्री गलत काम कर रही है, (बल्कि) इस बात के लिए कि हमको मिनिस्टर बनाओ, हमको मिनिस्टर बनाओ। यह डेमोक्रेसी है। चुनाव में प्रचार हुआ कि कांग्रेस 'स्टेबिलिटी' लायेगी, स्थिरता लायेगी। यह (जो) संविद सरकारों ने कर दिया, वह तो देखा गया—बार-बार हुकूमत (बदलती रही)। तुम्हारी मेजारिटी है और यही हालत है? कोई काम हो रहा है? जो हुक्म देते हैं मिनिस्टर लोग—चीफ मिनिस्टर हुक्म देते हैं—उस पर अमल नहीं होता, कागज पर वह रहता है। ठप्प है सारा 'एडमिनिस्ट्रेशन'। कौन करेगा काम? आपस में झगड़ा है, दिन-रात का। यह डेमोक्रेसी है? इसे बदलना चाहती है जनता—जयप्रकाश नारायण, छात्र,

युवक, जो इसको बदलना चाहता है वह 'एण्टी डेमोक्रेटिक' है ? वह दुश्मन हो गया (डेमोक्रेसी) का ? और ये लोग इसको 'डेमोक्रेसी' कहते हैं, दिन-रात बैठ करके जो साजिशें करते हैं, जितने ये एम० एल० ए० हैं कांग्रेस के। एक व्यक्ति के अधिकांश एम० एल० ए० हैं, और उनमें से सबको करीब-करीब माहवार, महीना बँधा हुआ है। अगर कांग्रेस चाहती है कि अपनी शक्ल जरा जनता के सामने अच्छी बनाकर रखे, अपना भला चाहती है तो उसको खुद चाहिए, इंदिराजी को चाहिए, कि इस असेम्बली को 'डिजॉल्व' कर दें। बस, उनकी पार्टी नहीं है, वह एक व्यक्ति की पार्टी है, जो रुपये के बल पर खड़ी है।

नयी राजनीति

सत्ता और दलगत राजनीति से आज भी जो लोग आशा रखते हैं, वे तो सूखी हड्डियाँ चूस रहे हैं और अपने ही रक्त का आस्वादन करके तृप्त हो रहे हैं। यह राजनीति तो गिर रही है, आगे और भी गिरेगी। तब इसके मलबे के ऊपर एक नयी बुनियाद से नयी राजनीति जनमेगी, जो इससे सर्वथा भिन्न होगी। वह लोकनीति होगी, राजनीति नहीं। उस लोकनीति के बीज आज भारत में मिट्टी में, घोर तप में लवलीन हैं। उन बीजों को पैदा किया था गांधी ने और भारत की धरती को अपनी पदयात्रा द्वारा बार-बार जोत करके उन्हें बोया है विनोबा ने। और हजारों अज्ञात सेवकों की सेवा उनका सिंचन कर रही है। वह ऊपर से नहीं बनेगी, नीचे से। दिल्ली से नहीं, गाँव-गाँव से, मुहल्ले-मुहल्ले से बनेगी। उसके लिए किसी नूतनतम पार्टी का साइनबोर्ड टाँग देना काफी नहीं होगा और न काफी होगा राजनीति के रङ्गमञ्च पर एक नूतनतम नेता का अवतरण। वह तो जनशक्ति के गर्भ से पैदा होगी।

●



४. सम्पूर्ण क्रान्ति के विभिन्न पहलू

मैं इस आन्दोलन को सम्पूर्ण क्रान्ति के रूप में देखता हूँ। समाज में आमूलाग्र परिवर्तन हो; सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, नैतिक परिवर्तन। एक नया समाज इसमें से निकले, जो समाज आज के समाज से बिलकुल भिन्न हो, उसमें कम-से-कम बुराइयाँ हों। हम ऐसा भारत चाहते हैं, जिसमें सब सुखी हों और अमीर-गरीब का जो आकाश-पाताल का भेद है वह न रहे। जो शोषण है वह न रहे, या कम-से-कम हो। समाज की बुराइयाँ दूर हों, इन्साफ हो। जो आर्थिक परिवर्तन हो उसका फल यह हो कि जो सबसे नीचे के लोग हैं, जो सबसे गरीब हैं, चाहे वे खेतिहर मजदूर हों, भूमिहीन हों—मुसल-

मान, हरिजन, आदिवासी, ये जो सबसे नीचे हैं, इनको पहले उठाना चाहिए। २७ वर्षों में जो कुछ हुआ वह उल्टा हुआ। गरीबी बढ़ती गयी और अमीरी भी, और दोनों का फर्क भी बढ़ता गया। भूमि-सुधार के कानून भी पास हुए, परन्तु भूमिहीनता बढ़ती ही गयी, घटी नहीं। पहले जितने परसेन्टेज में भूमिहीन थे उससे आज अधिक हैं।

यह क्रान्ति जो आरम्भ हुई है, अगर सफल होती है तो यह सब उसमें से निकलेगा। समाज की बुराइयाँ, छुआछूत, जात-पाँत के झगड़े, साम्प्रदायिक झगड़े, सब समाप्त होने चाहिए। हम सब हिन्दुस्तानी हैं, हम इन्सान हैं, यह विचार फैलना चाहिए। सबके दिल में इसकी जगह होनी चाहिए। हमारे कार्य में, हमारे जीवन में यह प्रत्यक्ष होना चाहिए, केवल जुबान पर नहीं, जैसा आज हो रहा है। और इसी तरह, चूँकि इसमें छात्र हैं, मैंने इनसे अक्सर कहा है कि, हिन्दू-समाज में, मुस्लिम-समाज में भी शायद किसी रूप में हो, जो यह तिलक-दहेज की प्रथा है, अगर यह आन्दोलन सफल हुआ तो यह चलना भी बन्द होगा। इस तरह मैं दूर तक देखता हूँ, जो सर्वोदय की मंजिल है, जो समाजवाद की मंजिल या साम्यवाद की मंजिल है—सब एक तरह की ही बात करते हैं, तरीके, रास्ते अलग-अलग हैं और हो सकते हैं—मैं इस आन्दोलन को वहाँ ले जाना चाहता हूँ। यह क्रान्ति है मित्रो, सम्पूर्ण क्रान्ति है।

सामाजिक क्रान्ति

यह जो क्रान्ति है इसके उद्देश्य तभी पूरे होंगे, जब समाज में सम्पूर्ण क्रान्ति होगी। सम्पूर्ण क्रान्ति का मतलब है कि समाज का परिवर्तन हो। समाज की कुरीतियों का भी परिवर्तन हो। तिलक-दहेज की प्रथा भी खत्म हो।

लड़के बैल और घोड़े नहीं हैं

ये बैठे हैं आप लोग यहाँ, वे कहेंगे, हमको बेटी की भी शादी करनी है। लड़कावाला तिलक माँगता है। अगर अपने बेटों के लिए तिलक नहीं लेंगे तो हम कहाँ से देंगे ? तो सब बेटेवाले और सब बेटीवाले समझ जायँ कि क्रान्ति की सफलता होती है तो आपके लड़के बैल नहीं हैं, घोड़े नहीं हैं, जो बाजार में आपको बेचना है। यह अत्यन्त निन्दनीय है। वह भारतीय संस्कृति हमारे यहाँ थी, जिसमें सीता ने वरमाला पहनायी थी रामचन्द्र को, स्वयम्वर इस देश में होता था, लड़की अपना वर स्वयं जहाँ चुनती थी, वहाँ आज लड़के के पिता के पास लड़कीवाले लोग जाते हैं। तो लड़के के पिता कहते हैं कि जरा लड़के को समझा लीजिये, मैं तो राजी हूँ। और लड़के महाराज के पास गये तो वे यह नहीं पूछते हैं कि लड़की कैसी है, कहाँ तक पढ़ी है। कहते हैं कि साहब, हमको तो 'फारेन' भेज दीजिये, विदेश भेज दीजिये यात्रा में, हमको एंबेसडर गाड़ी दे दीजिये। अब इन लड़कों से पूछो, अभागों से, कि मोटर साइकिल से शादी करोगे कि एंबेसडर से ? तुमको बीबी चुननी है कि साइकिल चुननी है बेवकूफो ! इतना पतन हुआ है समाज का कि कुछ ठिकाना नहीं। क्या बिहार के रहनेवाले हो, पूछा जायगा तुमसे, 'तुम अपनी शादी में तिलक लोगे ?' कहो कि नहीं लेंगे ! मैं तो आगे जाकर कहूँगा कि जाति-पाँति का भेद मिटाओ। विजातीय ब्याह करो। सजातीय हो, गोत्र हो, यह हो, वह हो—नाना प्रकार का ढकोसला रख लिया है, जो हिन्दू-समाज में कभी था नहीं।

सम्पूर्ण क्रान्ति का यह सामाजिक पहलू पहले हमारे यहाँ रह चुका है। हमारे देश में जब अंग्रेजी राज्य अपना कदम जमा रहा था उस समय यह प्रथा नहीं थी। उस समय के अंग्रेजों के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर आदि ने चिट्ठियाँ लिखी हैं ईस्ट इंडिया कम्पनी

को, जिसमें लिखा है कि यहाँ तो कोई दहेज की प्रथा नहीं, कोई डावरी सिस्टम नहीं। इसका मतलब यह कि बीमारी हाल में पैदा हुई है। गुलामी के साथ-साथ ये बीमारियाँ पैदा हुईं। जब हमारे समाज में जीवन था, शक्ति थी, तब हम दूसरों को हजम कर सकते थे। आक्रमणकारियों को, आक्रमणकारियों की संस्कृतियों को हजम कर लेते थे। आत्मसात् करके भारतीय बना लेते थे उनको। सौ बरस के बाद पता नहीं चलता था कि किधर से आये हैं। भारतीय हो गये। उनकी संस्कृति हमने ले ली। जो अच्छा था वह ले लिया, जो बुरा था वह छोड़ दिया। ऐसा नहीं कि हमारी संस्कृति में उस समय सब अच्छा ही था। कुछ बुरा भी था।

अस्पृश्यता मिटके रहेगी

तो संपूर्ण क्रान्ति में सारे समाज का परिवर्तन होगा। ऊँच-नीच का भेद मिटना चाहिए। जो हरिजन है वह भी इन्सान है। जिसकी सृष्टि हम हैं उसी भगवान् ने उनकी सृष्टि की है। हम ऊँचे हैं, वह अस्पृश्य हैं? वह नीचा है? उसको पाखाना साफ करने को कहेंगे? तानाशाही हो अगर इन हरिजनों की, तो क्या नियम बनायेंगे ये लोग? ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, भूमिहार, कायस्थ, लाला, ये बनिया सब लोग हमारे पाखाने साफ करें, ऐसा कहेंगे न उनका राज होगा तो? चूँकि आपका राज है, उनको दबाके रख दिया है। वे दलित, शोषित हैं। न समाज में उनकी इज्जत है, न कद्र है।

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'—यह भगवान् ने कहा था। चातुर्वर्ण की सृष्टि हमने की गुण, कर्म का विभाग देख करके। तो पंडितजी पंडित बने हुए हैं तथा गुण और कर्म उनके चमार के हैं, और फिर भी पूज्य होना चाहेंगे। चांडाल के गुण हैं, पर होना चाहेंगे वही। एक नम्बर के दुराचारी, व्यभिचारी

पंडित—सबको नहीं कह रहा हूँ—कितने ऐसे मिलेंगे आपको, अन्यायी, लोभी। लेकिन ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ इसलिए 'गोड़ लागी बाबाजी, गोड़ लागी पंडितजी !' चरण-स्पर्श होगा। तो कौन-सा गुण, कर्म ब्राह्मण का है उनमें ?

आज मैं देख रहा हूँ बिहार में संघर्ष के चलते नारी-शक्ति पैदा हो रही है। जब आप सोचियेगा। ये सारे सुधार क्या क्रांति नहीं ? हम चाहते हैं कि जीवन हमारा बदल जाय, फिर बिहार उस जगह पहुँच जाय, जिस जगह सम्राट् अशोक के जमाने में था।

सम्पूर्ण व्यवस्था और व्यक्ति साथ-साथ बदलेंगे

यह संघर्ष मिनिस्ट्री के इस्तीफे के लिए और विधानसभा के विघटन के लिए नहीं है, यह तो सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए संघर्ष है। सम्पूर्ण क्रान्ति सारे जीवन की क्रान्ति है। उस तरफ हमें कदम बढ़ाना है।

समाज बदलना है मित्रो ! समाज के एक अंग को बदल दीजिये और बाकी का ज्यों का त्यों सड़ा-गला समाज लेकर फिर आगे बढ़ें ऐसा होनेवाला नहीं है। वह अंग भी सड़ जायगा। इसलिए सारे समाज के कलेवर को बदलना है, उसकी आत्मा को बदलना है।

इन विचारों पर अमल करना आसान नहीं होगा। अमल करने के लिए बलिदान करना होगा, कष्ट सहना होगा, गोली और लाठियों का सामना करना होगा, जेलों को भरना होगा, जमीनों की कुर्कियाँ होंगी, यह सब होगा। यह क्रान्ति है मित्रो, और सम्पूर्ण क्रान्ति है। विधानसभा का विघटन तो एक मंजिल है, जो रास्ते में है। दूर जाना है, दूर जाना है। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में—अभी न जाने कितने मीलों इस देश की जनता को जाना है उस स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए, जिसके लिए देश

के हजारों-लाखों जवानों ने कुर्बानियाँ की हैं, जिसके लिए सरदार भगतसिंह, इनके साथी, बंगाल के सारे क्रान्तिकारी साथी, महाराष्ट्र के साथी, देशभर के क्रान्तिकारी साथी गोली के निशाना बने, या तो फाँसियों पर लटकाये गये; जिस स्वराज्य के लिए देश की लाखों-लाख जनता बार-बार जेलों को भरती रही है।

इस बात को ध्यान में रखना है कि यह संघर्ष केवल सीमित उद्देश्यों के लिए नहीं हो रहा है। इसके उद्देश्य तो बहुत दूरगामी हैं: भारतीय लोकतन्त्र को 'रीयल' याने वास्तविक तथा सुदृढ़ बनाना, जनता का सच्चा राज कायम करना, समाज से अन्याय, शोषण आदि का अन्त करना, एक नैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्रान्ति करना तथा नया बिहार बनाना और अन्ततोगत्वा नया भारत बनाना है। मित्रो, जैसा प्रारम्भ में कह चुका हूँ, यह सम्पूर्ण क्रान्ति है—टोटल रिवोल्यूशन है। और इसके आप अगुआ हैं। यह बड़ा कठिन है, परन्तु आपकी सफलता निश्चित है, क्योंकि यह युगधर्म की पुकार है।

हमारा आन्दोलन सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए है, जिसमें व्यवस्था भी बदलेगी और व्यक्ति भी, और मैं मानता हूँ कि इनमें कोई आगे-पीछे नहीं, साथ-साथ होगा। व्यक्ति समूह के लिए जिये और समूह व्यक्ति के लिए, यह एक दिन में नहीं होगा, कोई भी क्रान्ति एक दिन में नहीं होती है। इसलिए हमारी क्रान्ति आरोहण की एक प्रक्रिया होगी। पश्चिमी लोकतन्त्र के कठघरे से निकलकर कुछ नया सोचें।

हिंसा बनाम शान्ति

अक्ल से काम लीजिये

उस दिन जब मैं अस्पताल आया था तो एक भाई, जो देहात के थे, मुझसे कहने लगे कि आपने हमको कहा था कि शान्ति रखो,

शान्ति रखो। तो हमने शान्ति रखी। अब हम लोग क्या करें ? यदि ये लोग अपनी बन्दूकें रख देते तो हम इनके साथ निपट लेते। हम निहत्थे और वे भी निहत्थे। देखते कि क्या होता है उस लड़ाई में। या हमको वे बन्दूक दे देते तो दस को मारकर हम मरते। 'खून का बदला खून से लेंगे' यह भी सुना हमने। इस बारे में मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि ठीक है, कुछ हिंसा हो सकती है। आज सी० आर० पी० और बी० एस० एफ० मिलाकर शायद एक लाख बिहार में हैं, बिहार सैनिक पुलिस को छोड़ करके। उसके बाद दानापुर में आर्मी है बैठी हुई। हिंसा को लड़ाई हो तो कौन जीतेगा आप बता दीजिये ? आपके पास कितनी बन्दूकें मिलेंगी, कितनी लाठियाँ मिलेंगी ? और कितनी पिस्तौल और कितने बम मिलेंगे ? अक्ल से काम लीजिये। बुद्धि से काम लीजिये। 'खून का बदला खून से लेंगे !' क्या बदला लीजियेगा ? किससे लीजियेगा ?

शान्ति जनता की युद्ध-नीति है

आप कहियेगा, यह शान्ति-शान्ति की बात यह गांधीवालों का खब्त है। मित्रो, गांधीवालों का खब्त नहीं है। यह युद्ध-नीति है आपकी। जनता की युद्ध-नीति है, स्ट्रेटजी है। इसके बगैर आपकी सफलता होगी नहीं। आप जहाँ एक हिंसा करोगे वहाँ वे सौ हिंसा करने के लिए तैयार हैं। तो आप दिमाग से वह बात निकाल दो।

लोकतन्त्र के लिए शान्ति अनिवार्य शर्त

लोकतन्त्र की लड़ाई है। सच्चा लोकतन्त्र हम स्थापित करें। लोकतन्त्र लाठी से कैसे स्थापित ?होगा शान्ति के बिना ? जो यह समझते हैं कि गांधीवालों का यह खब्त है, जयप्रकाश नारायण का खब्त है, मैं उनसे यह पूछना चाहता

हूँ कि चुनाव हो पटना सिटी में और चुनाव में लाठी चले तो क्या वह लोकतान्त्रिक चुनाव हुआ ? क्या उससे लोकतन्त्र स्थापित होगा ? अक्ल की बात है न ? अगर लोकतन्त्र को कायम रखना है, मजबूत रखना है तो वह शान्ति के बगैर नहीं हो सकता है। शान्ति और लोकतन्त्र एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक दूसरे के बगैर नहीं जी सकते हैं, नहीं चल सकते हैं, यह आप ध्यान में रखो। बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ दुनिया में हुई हैं। इन क्रान्तियों का इतिहास क्या बदलता है ? जहाँ हिंसा से क्रान्ति हुई है, नारा यही है कि 'जनता का यह राज है, किसान और मजदूर का यह राज है'। असल में किसका है ? उसका है, जिसके हाथों में बन्दूक है। मैं कई बार पहले कह गया हूँ कि माओ का एक वाक्य अक्षरशः सत्य है, सौ फीसदी सही है कि 'सत्ता बन्दूक की नली से निकलती है !' लेकिन मित्रो, आज चीन की जनता के हाथों में, किसानों के हाथों में बन्दूक नहीं, चीन के मजदूरों के हाथों में बन्दूकें नहीं, चीन के विद्यार्थियों के हाथों में बन्दूकें नहीं हैं। तो राज जनता का कैसा ? सत्ता किसकी फिर ? जिसके हाथों में बन्दूक, याने किसके हाथों में ? माओ के हाथों में, पीपुल्स लिबरेशन आर्मी के हाथों में। तो जनता के 'नाम पर' होगी क्रान्ति, जनता के 'नाम पर', किन्तु जनता की छाती पर बैठकर राज करेंगे डिक्टेटर लोग। जनता का राज हरगिज नहीं होगा।

अगर कभी जनता का राज बन सकता है, कोई भी संभावना उसकी है तो तभी, जब शान्ति रहेगी। लोकतन्त्र रहेगा तभी। ऐसे तो विद्वान् लोग कहते हैं कि यह सपना है, जनता 'का' सही राज होगा नहीं, जनता 'के लिए' हो सकता है। 'गवर्नमेन्ट बाय द पीपुल' तो नहीं होगा। अब्राहम लिंकन की परिभाषा के अनुसार जनता राज करे स्वयं, यह नहीं होगा। मैं कहता हूँ

होगा, और संभव होगा शान्ति रहेगी, लोकतन्त्र रहेगा तभी। दूसरी किसी राजनीतिक व्यवस्था में जनता का राज नहीं होगा, जनता के नाम पर राज करनेवाले होंगे। जनता की छाती पर बैठकर दाल दलनेवाले लोग होंगे। इसलिए शान्ति यह गांधीवालों का खब्त नहीं है, नया भारत बनाना है न ? तो क्या चाहते हैं कि अशान्ति के नाम पर, हिंसा के नाम पर, गाँव-गाँव में डकैतियाँ-चोरियाँ हों ? सिविल वार हो भारत में ? गृहयुद्ध हो ? यही होगा न ! हिंसा का रास्ता खुलेगा, आपस में लड़ेंगे, मर जायेंगे, जो भारत का इतिहास बराबर रहा है : 'खून का बदला खून से लेंगे', 'हमारे हाथ में बन्दूक होती तो दस को मारकर मरते', यह कहने में बहादुरी की बातें हैं। बुद्धि नहीं जाती है आगे।

जनता का राज शांतिमय तरीके से ही सम्भव

हिंसा में मेरा विश्वास नहीं है और इसलिए मेरा विश्वास नहीं है, क्योंकि मैं लोकतन्त्र को मानता हूँ। मैं जनता को मानता हूँ। मैं नहीं चाहता हूँ कि जिनके हाथ में बन्दूक है वह जनता की छाती पर बैठकर जनता के नाम पर हुकूमत करे। तीन दिनों की बिहार-बन्द की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया है कि जनशक्ति ही वास्तविक शक्ति होती है। हिंसा का रास्ता वे ही अपनाते हैं, जिन्हें जनता पर विश्वास नहीं होता या उस पर आस्था नहीं होती या जिन्हें जनता का विश्वास प्राप्त नहीं होता। जनशक्ति हो तो हिंसा अनावश्यक होती है और हानिकारक होती है एवं जनशक्ति के अभाव में हिंसा बाँझ और क्रूर होती है। बिहार-बन्द की इतनी व्यापक सफलता हिंसा से असम्भव थी।

हमें अपना राज्य नहीं चाहिए। हमें सामान्य जनता का राज्य चाहिए। इसलिए हिंसा का मार्ग तो हमारे लिए सर्वथा त्याज्य है। इसलिए शांतिमय तरीकों के द्वारा परिवर्तन के अति-

रिक्त और कोई रास्ता नहीं है। उसके सिवा जनता का राज्य असम्भव है। आज की परिस्थिति को देखकर दिल में आग धधकती है, लेकिन हिंसा के रास्ते कोई काम सधता नहीं है।

जहाँ कानून निष्फल होता है वहाँ अहिंसा से ही आगे बढ़ना होगा। हिंसा से कुछ नहीं होता। मैंने हिंसक आन्दोलन भी किया है। उसकी सभी विद्या और दर्शन मैं जानता हूँ, लेकिन सोच-समझकर मैंने हिंसा का मार्ग छोड़ा है। हिंसा सामान्य मनुष्य की शक्ति नहीं है। बन्दूक की नली में से सत्ता निकलती है। माओ को जानना चाहिए और वे जरूर जानते होंगे कि किसानों और मजदूरों के पास बन्दूकें नहीं होतीं। और विद्यार्थियों के पास भी बन्दूकें नहीं होतीं। आज तो बन्दूक तीर-धनुष के समान हो गयी है। माओ के पास ऐटम और हाइड्रोजन बम हैं। बड़े-बड़े बमवर्षक हवाई जहाज हैं, मिसाइल्स हैं, जब कि किसान और मजदूरों के हाथ में ये सब हथियार आ सकेंगे ? हिंसक तरीके अपनाने पर तो, जिनके हाथ में शस्त्रास्त्र होंगे उन्हींका राज्य होगा, चाहे वह समाजवाद हो, साम्यवाद हो या और कोई वाद हो।

मैं देश में कोई ऐसी संगठित शक्ति शक्तिशाली नहीं देखता हूँ, जो हिंसा की शक्तियों का संग्रह करके हिंसक क्रांति, रक्त-क्रांति को सफल बना सके। आज हिंसा से अराजकता फैलेगी। अगर असंतोष को शांतिमय संघर्ष का रास्ता नहीं दिया गया तो छिटपुट हिंसा फैलेगी और उसमें से कोई भी शासक हो, इंदिराजी हों, और कोई हो, सेना हो सकती है, वह कहेगी—'अब तो देश बिगड़ रहा है, देश मिट जायगा। देश में आग लगी हुई है, तानाशाही के सिवा रास्ता नहीं है। देश के बुद्धिजीवी लोग कह रहे हैं, लोकतन्त्र से कुछ होने-जानेवाला नहीं है। तानाशाही चाहिए, डिक्टेटरशिप चाहिए।' तो इसमें से तानाशाही निकलेगी। संकट

के समय ऐसा कोई एक निकलकर आयेगा, कोई हो, जो सेना के बल पर कहेगा कि हम इस देश में लोकतन्त्र को चलने नहीं देंगे, लोकतन्त्र असफल हो गया। तो हम नहीं चाहते हैं कि वह हो। मैं तो सोलह आना इसके विरुद्ध हूँ। तो क्या करना होगा? इसके लिए भी आवश्यक है कि जनता के असंतोष को, दुख-दर्द को, उसके कष्ट को, रोष को, क्रोध को सबको एक दिशा दी जाय, शांतिमय क्रांति की दिशा दी जाय।

हिंसक क्रान्ति की तीव्रता : एक भारी भ्रम

मैं अपनी बात कहूँ तो हिंसक क्रान्ति के लिए मुझे कोई नैतिक आपत्ति नहीं। मुझे यदि कोई आपत्ति है तो वह व्याव-हारिक है। पहली बात तो यह कि हिंसक क्रान्ति के परिणाम जल्दी आते हैं, यह एक बड़ा भारी भ्रम है। कोई यह कहे कि रक्त-क्रान्ति अहिंसक क्रान्ति से ज्यादा जल्द होती है, तो दुनिया की क्रान्तियों का इतिहास देखने से ऐसा लगता नहीं। दुनिया की कोई भी हिंसक क्रान्ति थोड़े वर्षों में नहीं हुई है और आज तक अपने मूल उद्देश्य तक नहीं पहुँच सकी है। क्रान्तिकारी जमात के हाथ में सत्ता आ जाय, यह कोई क्रान्ति की सफलता नहीं। इससे क्रान्ति का उद्देश्य पूरा नहीं होता। इस 'सफलता' का क्या अर्थ होता है? उसका अर्थ इतना ही होता है कि पुरानी समाज-व्यवस्था को ध्वस्त किया जा चुका, लेकिन ध्वंस ही किसी क्रान्ति का लक्ष्य नहीं हो सकता। उसका लक्ष्य तो हमेशा एक नयी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना होता है। लेकिन हिंसक क्रान्ति के सफल होने के बाद क्रान्तिकारियों को यह नयी व्यवस्था लाने में कितने वर्ष लगते हैं? उक्त सफ-लता के बाद उनका पहला काम हमेशा यह देखा गया है कि अपनी सत्ता के लिए वे खूनी संघर्ष में पिल पड़ते हैं। अपने

सपनों का समाज—यदि वे सपने आपसी रक्तपात में बह न गये हों—बनाने में कितना समय लगता है ?

इससे क्रान्ति का मूल उद्देश्य सिद्ध नहीं होता

बल्कि अनुभव तो यह है कि रक्त-क्रान्ति से जो नया समाज बनता है, वह उस समाज से बहुत भिन्न बनता है, जिसकी कल्पना क्रान्तिकारियों ने पहले की होती है। जिन उद्देश्यों को लेकर रक्त-क्रान्ति होती है, वे उद्देश्य तो पूरे होते नहीं, बल्कि उसके विपरीत परिणाम ही आते हैं। क्रान्ति के पहले जैसे समाज की रचना क्रान्तिकारी सोचते थे, करना चाहते थे, क्रान्ति के बाद वैसी रचना नहीं हो पायी।

इतिहास में क्या ऐसी भी हिंसक क्रान्ति हुई है, जो अपने अभीष्ट आदर्शों को प्राप्त करने में सफल हुई हो ? जरा फ्रांस की क्रान्ति पर तथा उसके समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुता के आदर्शों पर विचार करें। फ्रांस की क्रान्ति को हुए लगभग दो सौ वर्ष बीत चुके, लेकिन समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुता के उसके मूल उद्देश्य क्या सिद्ध हुए हैं ? रूस की क्रान्ति को लगभग ५५ वर्ष हुए। लेकिन क्या वहाँ मजदूरों के हाथ में सत्ता आयी है ? लेनिन का प्रथम सूत्र था : 'सर्वसत्ता सोवियतों (पञ्चायतों) में', लेकिन आज वहाँ तरुण यहाँ की तरह मुक्तभाव से बोलचाल नहीं सकते। इसीलिए उनको गुप्त रूप से बुलेटिन निकालनी पड़ती है। क्रांति को 'सफल' हुए ५५ वर्ष बीत गये, फिर भी यह स्थिति है।

क्रान्ति का लक्ष्य है, हर व्यक्ति को आवश्यकताभर मिलेगा और हर व्यक्ति शक्तिभर समाज को देगा। रूस और चीन में जो हिंसक क्रान्तियाँ हुईं, उनका भी लक्ष्य यही था। इसके बदले वहाँ तो अभी भी 'काम बराबर दाम' का पूँजीवादी सिद्धान्त ही कायम है। आज भी उन लोगों के सामने यह एक बड़ा सवाल है

कि किस तरह जनता को नये मूल्यों में प्रशिक्षित करें, किस तरह समाज में ऐसा मानस-परिवर्तन लायें, ताकि जिन आदर्शों को सामने रखकर क्रान्ति हुई थी, वे आदर्श व्यवहार में लाये जा सकें। मैं नहीं कह सकता कि रूसवाले भला कब इस आदर्श तक पहुँच सकेंगे।

अहिंसा में परिवर्तन और नवनिर्माण एक साथ

इस तरह, दुनियाभर की हिंसक क्रान्तियों का इतिहास देखेंगे तो पता चलेगा कि पुराने समाज को तोड़ने में हिंसक क्रान्ति लम्बे अर्से के बाद सफल होती है और उसके बाद नये समाज के निर्माण में भी बहुत समय लगता है तथा निर्माण धीरे-धीरे ही हो पाता है। दूसरी तरफ अहिंसक क्रान्ति में पुराने समाज को बदलने और नये समाज को गढ़ने का काम साथ-साथ होता रहता है। अहिंसक प्रक्रिया में यह गुण है कि परिवर्तन और नवनिर्माण दोनों साथ-साथ चल सकते हैं। इन सब बातों को देखते हुए मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि भारत में अगर कभी रक्त-क्रान्ति होगी तो ज्यादा विलम्ब से होगी। और अहिंसक क्रान्ति उससे कहीं जल्दी होगी और वह हो रही है।

दूसरी बात समझने की है कि यह निश्चित नहीं है कि हिंसक क्रान्तिकारी आन्दोलन हमेशा सामाजिक क्रान्ति की तरफ ही हमें ले जायगा। उसमें से प्रतिक्रिया भी पैदा हो सकती है और अन्त में वह एक फासिस्ट तानाशाही का रूप ले सकती है। अथवा अन्ततः उसमें से अराजकता, व्यापक दुःख-कष्ट, राष्ट्रीय विघटन एवं गुलामी के परिणाम भी पैदा हो सकते हैं। जो लोग हिंसा का प्रचार करते हैं, उन्हें इन सम्भावनाओं पर विचार करना चाहिए।

हिंसा से सत्ता जनता के हाथ में नहीं आती

तीसरी बात यह है कि सत्ता हमेशा ही क्रान्ति करनेवालों

में से ऐसे मुट्ठीभर लोगों द्वारा हड़प ली जाती है, जो सबसे ज्यादा निर्भय होते हैं। ऐसा होना अनिवार्य ही है।

क्रान्ति के लिए ऐतिहासिक परिस्थितियाँ पूर्ण परिपक्व होनी चाहिए

चौथी और बुनियादी बात यह है कि क्रान्तियाँ क्रान्तिकारियों की बिलकुल मर्जी पर ही नहीं हुआ करतीं। क्रान्ति की सफलता के लिए सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियाँ परिपक्व होनी चाहिए। इसमें पूरी शताब्दी लग सकती है, जैसा कि इतिहास में अक्सर हम देखते हैं। स्वराज्य के बाद भारत में हिंसा में आस्था रखनेवाले लोगों ने विनोबा से पहले काम शुरू किया है। वे तेलंगाना के रक्तपात के समय से ही क्रान्ति करने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन इन २२-२३ वर्षों में वे कहाँ तक आगे बढ़े हैं? तेलंगाना में हिंसक क्रान्ति सफल हुई? बंगाल में हुई?

जब तक समाज भीतर से तैयार नहीं होता, तब तक क्रान्ति नहीं होती। यह क्रान्ति-शास्त्र का एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है। पुराना समाज अन्दर से जर्जर हो जाता है, तब परिस्थिति परिपक्व होती है और क्रान्ति होती है। समस्याएँ एक सीमा के बाहर बढ़ जाती हैं तो घातक बन जाती हैं। कार्ल मार्क्स ने कहा था कि क्वान्टिटी चेंजेस इनटू क्वालिटी—समस्या का अतिरेक परिस्थिति में गुणात्मक परिवर्तन कर देता है। भ्रष्टाचार अति अधिक हो जाने पर क्वालिटेटिव चेंज—गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है। वैसा न हो तो समाज टिक नहीं सकता, खत्म हो जायगा, मिट जायगा।

क्रान्ति को कोई क्रान्तिकारी नेता पैदा नहीं करता। क्रान्ति को न लेनिन ने पैदा किया, न माओ ने किया, न गांधी ने। क्रान्ति परिस्थिति में से निर्माण होती है। क्रान्तिकारी नेता की पहचान यह है कि वह परिस्थिति की नब्ज को पहचान लेता है। बोल्शेविक पार्टी की सभा लेनिनग्राड में होती थी। लेनिन ने कहा,

'६ नवम्बर को क्रान्ति होती है तो वह समय से पहले होगी और ८ नवम्बर को होती है तो समय के बाद होगी। इसलिए हमको ७ तारीख को ही क्रान्ति करनी होगी।' इस बात के लिए उन्होंने दलीलें पेश कीं। उसमें एक बात यह कही कि हमारी क्रान्ति के लिए जार के सिपाहियों ने भी अपना वोट दिया है। किसीने पूछा, वह कैसे? लेनिन ने कहा, 'सैनिकों ने अपने पैरों से वोट दिया है। देखिये न, मोर्चे पर से आये दिन हजारों सैनिक अपनी बन्दूकें लेकर भाग रहे हैं।'

पूरी शक्ति से जुट जायँ

अब गांधी के जमाने में नॉन वायलेंट मीन्स से स्वराज्य की प्राप्ति का उद्देश्य कांग्रेस का नहीं बन सका, तो आज मेरी क्या बिसात है कि मैं अहिंसा के नाम पर कुछ करना चाहूँ। तो मैं शान्तिमय उपायों की बात करता हूँ। मैं तो अहिंसकों की बात नहीं करता, शान्ति की बात करता हूँ। शान्तिमय तरीकों से जनता अपने दुःख के खिलाफ, अपनी मुसीबतों के खिलाफ, अपने शोषण, अन्याय के खिलाफ, जुल्म के खिलाफ, अगर संघर्ष न कर सके और उसका मार्ग नहीं मिलता है तो वहाँ छिटपुट हिंसा फैलेगी।

मिलीटेन्सी दो प्रकार की

मिलीटेन्सी आप सब लोग समझते हो। एक तो अहिंसा की मिलीटेन्सी है, जिसमें हमारे ऊपर लाठियाँ भी बरस रही हैं और फिर भी हाथ नहीं उठता है। जैसे उत्तर प्रदेश में कानपुरवालों ने नारा शुरू किया—'हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा।' लगानबन्दी कर दी हमने। कुर्कियाँ हो रही हैं, मकान जब्त हो रहे हैं, जमीन जब्त हो रही है और फिर भी हम डटे

हुए हैं। दमन की चक्की चाहे जैसी भी चल रही हो, फिर भी अहिंसा के रास्ते से हम डिग नहीं रहे हैं। यह अहिंसा की मिलीटेन्सी है। और दूसरी मिलीटेन्सी है कि रायफल लेकर लड़ो।

स्वराज्य में लड़ाई लड़ी हमने बगैर गन के, बगैर बन्दूक के। वहाँ पावर कहाँ से आयी थी भाई? तो पावर आयी थी त्याग से, बलिदान से और कुर्बानियों से। कल गाली दे दी किसीको, किसीका कुर्ता फाड़ दिया। यह सब फूहड़पन, व्हलगेरिटी है। यह कोई मिलीटेन्सी नहीं है। इसमें न हिंसा की शक्ति है और न अहिंसा की शक्ति। हम तो एक नैतिक क्रान्ति चाहते हैं।

हमें इतना समझ लेना चाहिए कि यदि अहिंसा को हिंसा पर विजय पानी है तो उसे तीव्र गति से काम करना होगा। अन्यथा घटना-चक्र आगे बढ़ता जायगा और हिंसा की बाढ़ में अहिंसा डूब जायगी। लोगों की समस्याएँ यदि अहिंसा के द्वारा जल्दी हल नहीं होंगी तो अहिंसक कार्यकर्ताओं के लिए इतिहास की गति रुकनेवाली नहीं है। वर्तमान समाज-रचना अपने सारे लोभ-लालच, स्वार्थ, मानव-विमुखता, अन्याय, शोषण और विषमता के साथ उन्मूलित होनी ही चाहिए। यदि अहिंसा उसे शीघ्र नहीं बदलेगी तो हिंसा कदम बढ़ायेगी। यह दूसरी बात है कि हिंसा कोई भी समस्या हल नहीं कर सकती और हिंसा के मार्ग से एक तरह के अन्याय, शोषण, लोभ और स्वार्थ की जगह दूसरे तरह के अन्याय, शोषण, लोभ और स्वार्थ ले लेंगे। पर लोगों के ध्यान में जब तक यह बात आयेगी तब तक समय चूक गया होगा और अन्धकार की शक्तियों ने अपना आसन जमा लिया होगा।

इसीलिए यह काम पूरी शक्ति के साथ सातत्यपूर्वक और तीव्रता से हो, यह अत्यन्त जरूरी है। इसके लिए तो हमें अपना

सम्पूर्ण जीवन इसमें लगा देना है। मैं तो किसी दूसरी चीज की कल्पना भी नहीं कर सकता, जो हमारी निष्ठा और पुरुषार्थ के लिए इसकी अपेक्षा अधिक उपयोगी हो। क्रान्ति-सेना की रीढ़ ऐसे लोगों से ही बन सकती है, जिन्होंने क्रान्ति-वेदी पर अपना जीवन समर्पण कर दिया है। फुरसत से काम करने से नहीं चलेगा। इसमें तो जीवन दान ही देना होगा।

समय की चुनौती पहचानिये

सम्पूर्ण क्रान्ति कोई एक वर्ष में तो नहीं होती है, और उसके लिए ५० वर्ष भी नहीं चाहिए। मैंने बार-बार कहा है कि सामान्य परिस्थिति में जो काम १००-५० वर्ष में हो सकता है वह क्रान्ति-कारी परिस्थिति में ५ वर्ष में हो जायगा। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि हम लोगों को समय को पहचानना चाहिए। इस-लिए इस मौके पर अगर पुरानी चर्चा और दलीलें करते रहेंगे और उसीमें चक्कर काटते रहेंगे तो छोटे-मोटे जो काम पहले करते रहे, वे ही करते रह जायेंगे। सम्पूर्ण क्रान्ति अकेले बिहार में नहीं हो सकती है। सारे देश में लहर दौड़ेगी तो होगी। उसका जितना हिस्सा हम बिहार में कर सकते हैं वह करेंगे।

ये वामपंथी पार्टियों के लोग, जिनकी सहानुभूति है इस संघर्ष के साथ, वे चाहते हैं कि हुकूमत बनेगी तो क्या-क्या होगा, सारा कार्यक्रम लिख दिया जाय। मैंने उनसे कहा कि भाई, आज तक कोई ऐसी क्रान्ति नहीं हुई है, जो किसी किताब के मुताबिक हुई हो, चाहे वह मार्क्स की किताब हो, लेनिन की किताब हो कि माओ की किताब हो या किसी और की किताब हो। हर क्रान्ति अपनी किताब स्वयं लिखती है। तो बिहार की यह क्रान्ति भी, जो भारत में फैलेगी, अपनी किताब तैयार कर रही है। यह नकल नहीं करेगी किसीकी। कहाँ हैं आज हम? आप सब

वामपंथी लोग मिलकर क्या कर सके हैं ? २७ वर्ष में क्या किया है ? तो भूल जाओ इन सब बातों को। यह जन-आन्दोलन है और जैसे-जैसे आन्दोलन बढ़ेगा वैसे-वैसे रास्ता खुलेगा। नया-नया प्रोग्राम बनेगा। मैं कौन होता हूँ कह देनेवाला कि ५ वर्ष के बाद यह होगा, हुकूमत बनेगी तो उसका यह प्रोग्राम रहेगा, यह प्रोग्राम बनेगा ? जनता अपना प्रोग्राम बनायेगी।

आज हम एक बहुत बुनियादी क्रान्ति की देहली पर आ पहुँचे हैं। समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुता, बिरादरी, राज्यविहीन समाज, हरएक को आवश्यकतानुसार मिले और हरएक अपनी क्षमताभर समाज को दे—ये सब ध्येय अब सिद्ध हों, प्रत्यक्ष व्यवहार में उनका अमल हो—ऐसी आज के युग की माँग है। गांधीजी एक बात बार-बार कहते थे। वे कहते थे, दूसरी क्रान्तियाँ इकहरी हैं, वे मात्र समाज के बाहरी ढाँचे में ही परिवर्तन लाती हैं, जब कि मेरी क्रान्ति दुहरी क्रान्ति होगी, मानवीय क्रान्ति होगी, जो मनुष्य के मानस में शुरू होगी और अन्त में समाज के बाहरी ढाँचे में परिवर्तन लायेगी। यह आध्यात्मिक क्रान्ति होगी।

तरुणाई की उत्तुंगतम उड़ान

इस देश का आध्यात्मिक उत्तराधिकार भी आज ऐसी एक अभिनव क्रान्ति के लिए आह्वान कर रहा है।

इस आह्वान को कौन सुनेगा ? कौन आगे कदम बढ़ायेगा ? इस देश का अध्यात्म बूढ़ों की वस्तु नहीं, जवानों की वस्तु रही है। जब हृषीकेश ने जीवन के कुरुक्षेत्र में अपूर्व अध्यात्म का पांचजन्य फूँका था, तब वे वृद्ध नहीं, युवा थे। और वे थे सारथी भारत की उत्कृष्ट तरुणाई के रथ के। जब अपनी प्रिया की गोद में नवजात राहुल को सोया छोड़कर सिद्धार्थ अपनी अद्वितीय सांस्कृतिक क्रान्ति के पथ पर चल पड़े थे, तब वह वृद्ध नहीं, युवा

थे। अद्वैत के अनन्यतम शोधक शंकर ने जब अपनी दिग्विजय-यात्रा की थी, तब वे वृद्ध नहीं, युवा थे। विवेकानन्द ने शिकागो के रङ्गमञ्च पर जब वेदान्त के सार्वभौम धर्म का उद्घोष किया था, तब वे वृद्ध नहीं, युवा थे। गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के दावानल में कूदकर जब अध्यात्म का आग्नेय प्रयोग किया था, तब वे वृद्ध नहीं, युवा थे। नहीं मित्रो ! अध्यात्म बुढ़ापे की बुढ़-भस नहीं, तरुणाई की उत्तुङ्गतम उड़ान है।

इसलिए जिस अभिनव क्रान्ति की ओर मैंने इंगित किया है, उसके सैनिक और सेनापति तरुण ही हो सकते हैं। इस सांस्कृतिक क्रान्ति के बिना भारत एवं भारतीयता का बचना दुष्कर प्रतीत हो रहा है।

५. कार्यक्रम



भ्रष्टाचार, महँगाई, बेरोजगारी का निवारण तथा शिक्षा में आमूल परिवर्तन आदि हमारे आन्दोलन की मूल माँगें रही हैं। इनकी तथा नया समाज बनाने के हमारे सामाजिक, आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति क्रान्ति से ही संभव है। उसके लिए हमें संघर्ष और रचना के रूप में क्रान्ति की विविध प्रक्रियाओं से गुजरना होगा। सम्पूर्ण क्रान्ति समस्त जनता की निष्ठा और शक्ति से ही संभव है। हमारे आन्दोलन ने जनता की भावना को गहराई के साथ स्पर्श किया है, लेकिन अब उससे आगे जाकर यह विश्वास उनमें पैदा करना है कि यह आन्दोलन उनका भी उतना ही है, जितना छात्रों अथवा वर्तमान व्यवस्था से पीड़ित अन्य लोगों का।

इस दृष्टि से हमें अपने कार्यक्रम में कुछ ऐसे मुद्दे, जैसे भूमिहीनता, जो दुर्भाग्य से पिछले वर्षों में घटने के बजाय बढ़ी है, उसका निवारण, खेतिहर मजदूरों को उचित मजदूरी, जिसका एक योग्य हिस्सा अनाज में हो, ताकि कम-से-कम पेट भरने की चिंता से वे मुक्त हों, किसानों के लिए खाद की कीमत, नहर रेट, मालगुजारी रेट, रोड सेस, स्वास्थ्य सेस आदि में वृद्धि का निराकरण, सूदखोरी से मुक्ति, आदिवासियों की तात्कालिक समस्याओं, जैसे जंगल की लकड़ी, चराई आदि आर्थिक राहत के कार्यक्रम तथा तिलक-दहेज-प्रथा के उन्मूलन जैसे सामाजिक कार्यक्रम लेने होंगे, जिनका सीधा सम्बन्ध गरीब एवं सामान्य जनता के हितों से है। वैसे ही राशन की दूकानों पर अनाज तथा किरासन तेल आदि दैनिक आवश्यकताओं का समुचित वितरण, संग्रहखोरी को रोकना, बाढ़-पीड़ितों की सेवा आदि कार्य किये जायँ, जिससे जनता को तत्काल राहत मिले। हरिजन, आदिवासी, मुसलमान और महिला ये सब समाज के ऐसे अंग हैं, जिन्हें इस आन्दोलन में यह आश्वासन दिखायी देना चाहिए कि हम जिस नयी सामाजिक व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील हैं उसमें उनके लिए सम्मान और समता का स्थान होगा।

यह सारा करने के लिए संगठन आवश्यक है।

संगठन : संघर्ष-समितियाँ

छात्र, विपक्षी दल, सर्वोदय-आन्दोलन के नेता तथा प्रमुख नागरिक पूरे प्रदेश में दौरा करेंगे, प्रचार करेंगे और संगठन खड़ा करने में मदद करेंगे। मैं चाहता हूँ कि हर ग्राम-पंचायत में जन-संघर्ष-समितियाँ बनें और देहातों में, कस्बों में, छोटे-बड़े शहरों में जहाँ भी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय हों, वहाँ छात्र-संघर्ष-समितियाँ बनें। छात्रों के अलावा जो अन्य युवक हैं, वे

जन-संघर्ष-समितियों के सदस्य बनें। सदस्य ही नहीं, उनके अगुआ बनें, इसलिए कि इस संघर्ष का इंजन युवा-शक्ति—जिसमें छात्र-शक्ति भी निहित है—के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता है।

कार्यक्रम—

१. विधायक एवं प्रखण्ड कार्यालय पर सत्याग्रह

एक मुख्य कार्यक्रम विधानसभा के फाटक पर सत्याग्रह का होगा और साथ-साथ चुनाव-क्षेत्रों में सभाएँ आयोजित करने का होगा। हम गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझायें कि हम विधान-सभा के विघटन की माँग क्यों कर रहे हैं। इसका सबसे बड़ा फायदा तो यह रहेगा कि आगे चलकर हमें जो नवनिर्माण करना है और लोक-प्रतिनिधि को खड़ा करना है, उसके लिए भूमिका बनेगी। लोक-शिक्षण से लोक-जागृति पैदा होती है, एक शक्ति उभरती है।

सभी विधायक बुरे नहीं हैं, यह मानते हुए भी इतना तो स्पष्ट है कि बिहार में उन लोगों ने जनता का विश्वास खो दिया है। उन लोगों को स्वयं इस्तीफा देना चाहिए था, लेकिन नहीं देते। कुछ लोगों ने दिया है, लेकिन बाकी लोग नहीं देते। उन लोगों को इस्तीफा देने के लिए बाध्य करने का तरीका क्या हो?

मैं विद्यार्थी मित्रों से कहूँगा कि अगर हमको लोकनीति की दिशा में जाना है तो लोक-जागृति और लोक-शक्ति-निर्माण का कार्य करना होगा। आज अगर विधानसभा के विघटन का उद्देश्य है तो हम लोग बिहार में सब चुनाव-क्षेत्रों में फैल जायँ। विद्यार्थी लोग, अध्यापक, सर्वोदय-कार्यकर्ता, रचनात्मक कार्य-कर्ता जाकर जनता से कहें कि हमारा अभिप्राय है कि विधान-सभा भंग होनी चाहिए। आप सब एक लाख मतदाता एक जगह इकट्ठे नहीं हो सकेंगे, लेकिन जगह-जगह इकट्ठा होकर अपना मत प्रकट करें।

हम लोगों को भीड़तन्त्र नहीं चलाना चाहिए। जनता ने एक व्यक्ति को चुनकर भेजा है तो उसे यह कहने का अधिकार है, मेरे मतदाताओं की इच्छा के अनुसार मैं काम करूँगा। किसीके कहनेभर से इस्तीफा नहीं दूँगा। हम लोग विधानसभा के विघटन के बारे में अपना अभिप्राय अवश्य व्यक्त करें, किन्तु विधायक से इस्तीफा माँगने के समय उसके चुनाव-क्षेत्र के मतदाताओं की माँग को व्यवस्थित्त ढंग से पेश करना चाहिए।

आप लोग विधायकों के पास जाकर उनसे पूछिये कि क्या इस्तीफा न देकर वे जनता के साथ, संविधान के साथ और देश के लोकतन्त्र के साथ न्याय करेंगे? आपकी बात एक से अधिक बार समझाइये, उनके मित्रों को समझाइये, उनके परिवार को समझाइये, यह आप लोगों को सोचना होगा। लोगों के पास जाना, उनको समझाना, जुलूस निकालना, गवर्नर के यहाँ जाना, यह सारा लोकतन्त्र का हिस्सा है, उसमें कोई रुकावट नहीं हो सकती। मोहल्लों में नुक्कड़-सभाएँ कर सकते हैं, किन्तु दबाव डालने के और तरीके इस्तेमाल न करें, जिससे कि आन्दोलन का नैतिक आधार ही टूट जाय।

असेम्ब्ली के गेटों पर सत्याग्रह हो। सत्याग्रह का रूप क्या हो? पिकेटिंग का। पचीस, पचास हों, हम सब गेटों पर खड़े हो जायँ। एम० एल० ए० साहब आयें, मंत्री साहब आयें, उनको रोकें कि आप अन्दर न जाइये, जाना है, तो हमारी पीठ पर से जाइये, हम आपको जाने नहीं देंगे, असेम्ब्ली नहीं चलने देंगे। गिरफ्तारियाँ होंगी, हम जेलों को भर देंगे। कई लड़के जेल जाने से डरते हैं—यह मैं लड़कों के सामने कहना चाहता हूँ। जेल से डरोगे, तो कभी तुम्हारी सफलत्ता नहीं होगी। जेल से ही स्वराज्य पैदा हुआ है। जेल से ही तुम्हारे अधिकार प्राप्त होंगे।

जनता के अधिकार प्राप्त होंगे और सच्चा स्वराज्य मिलेगा। लाठी भी तुम पर चलायी जायगी, तो बर्दाश्त करोगे।

एक दिन पटने में सत्याग्रह के लिए गये तो वहाँ विधायकों के साथ कुछ दुर्व्यवहार हुआ। कुछ लोगों का कुर्ता फाड़ दिया गया, कुछ और हुआ। हमने कहा कि यह तो बहुत गलत काम हुआ। और हमने विधानसभा के स्पीकर को पत्र लिखा कि उस दिन जो विधायकों के साथ दुर्व्यवहार हुआ उन विधायकों से आप मेरी ओर से क्षमा माँगिये और यह मेरी चिट्ठी उन्हें पढ़-कर सुना दीजिये। इस पर कुछ लोगों को अच्छा नहीं लगा कि जयप्रकाशजी तो हमारा मोराल कमजोर कर रहे हैं, हमारी अति-रिक्त शक्ति को कमजोर कर रहे हैं। तो मित्रो, एक बात कहना चाहता हूँ कि मैं दो प्रकार की—शान्तिपूर्ण या हिंसक—मिली-टेन्सी जानता हूँ। तीसरे प्रकार की मैं नहीं जानता।

इस निकम्मी सरकार को हम चलने ही न दें, जहाँ-जहाँ संभव हो। और जहाँ जनता की कोई हानि हमारे इस कार्यक्रम से न हो, वहाँ हम सरकार के साथ असहयोग करें। जैसे--लोग अपने झगड़े आदि थानों या अदालतों में न ले जायँ, बल्कि स्वयं पुरानी पंच-पद्धति के अनुसार हल करें। इसके साथ-साथ यह भी कोशिश की जाय कि सरकारी दफ्तरों को, जो विशेषकर प्रशासनिक हैं, ठप्प कर दिया जाय--ब्लॉक तथा अंचल से लेकर कलक्टरी तक और बाद में आवश्यकता हुई तो सचिवालय तक भी। तो, एक तो यह ठप्प करने का कार्यक्रम हुआ। इसके साथ-साथ चुने हुए प्रकार का असहयोग का कार्यक्रम भी चलेगा।

२. कर-बन्दी

दूसरा कार्यक्रम यह कि जिस सरकार को हम मानते नहीं, जिसको हम हटाना चाहते हैं, उसको हम कर क्यों दें ? तो हमें

कर-बन्दी का आन्दोलन करना होगा। अभी तो कुछ चुने हुए करों को बन्द करने का कार्यक्रम देना है। जैसे—जमीन का लगान, सब प्रकार के सेस, सड़क सेस, शिक्षा सेस आदि। साथ-साथ तकाबी की अदायगी भी बन्द कर देनी होगी। इस कर-बन्दी-आन्दोलन का यह परिणाम होगा कि गिरफ्तारियाँ होंगी। जमीन की, अचल सम्पत्ति की कुर्की आदि होगी। परन्तु जैसा कि एक मित्र मुझसे कह रहे थे, गाँव के एक किसान से इस सम्बन्ध में उनकी बातचीत हुई तो उस किसान ने कहा कि 'करें वे कुर्कियाँ, अगर उनकी हिम्मत हो तो। फिर तो उन्हें आना पड़ेगा हम लोगों के पास वोट के लिए। तो उस वक्त उनको मालूम हो जायगा कि कुर्कियों का नतीजा क्या हुआ।' और आखिर जब यह सरकार नहीं रहेगी और दूसरी सरकार बनेगी तो इसमें संदेह नहीं कि सब कुर्कियाँ रद्द होंगी और लोगों की जमीन-जायदाद वापस होगी।

ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि नीलाम हो, कुर्की हो तो भी जमीन खरीदनेवाला कोई न हो और खरीद भी लेता हो तो आन्दोलन सफल होगा तो फिर जमीन सूद के साथ वापस मिल जायगी। डरने की कोई बात नहीं। बारडोली में कितनी कुर्कियाँ हुई थीं, स्वराज्य के बाद सब जमीन उनको वापस मिली है।

शहरों में अभी जो टैक्स है, एक तो आबकारी का टैक्स, शराब की दूकानों की पिकेटिंग हो, और भट्ठियों पर हो। और भट्ठियों से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है सरकार का डीपो, वहाँ से बैलगाड़ियों और ट्रकों पर शराब लेकर जाते हैं, उनको रोका जाय, शराब निकालकर सड़क पर गिरा दी जाय। दूसरा है मनोरंजन कर (एन्टरटेनमेंट टैक्स)। जो वहाँ सिनेमा-घर पर पिकेटिंग करना चाहें, करें।

३. जनता-सरकार

बिहार के अभूतपूर्व बन्द के बाद जनता के पास इसके सिवा क्या विकल्प रह जाता है कि वह इस सरकार को अस्वीकार करे और उसका चलना असम्भव कर दे तथा स्वयं अपना काम-काज चलाने का निर्णय करे? मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गांधीजी ने भी जनता से यही करने के लिए कहा होता। अपने ऊपर स्वयं शासन करना और एक ऐसी सरकार को, जिस पर जनता का विश्वास अब नहीं रहा और जो अपहर्ता और प्रवंचक बन गयी है, मानने से इनकार करना जनता का बुनियादी अधिकार है। यह इंदिराजी तथा उनके लायक सहयोगियों की नजर में 'खुला विद्रोह' हो सकता है, परन्तु यह तो शुद्ध और सरल जनता का लोकतन्त्र है। प्रखण्ड में जहाँ अच्छा संगठन है, पार्टी का भी संगठन हो, ठप्प करने के साथ-साथ जनता-सरकार, समानान्तर सरकार का काम शुरू करे। ब्लाक के स्तर पर जनता का राज।

जनता-सरकार कैसे बनेगी ?

जहाँ पर्याप्त जनशक्ति बनी है, जनता-सरकार के कार्यक्रम को चलाया जाय। सम्भव हो तो गाँव, पंचायत और प्रखण्ड तीनों स्तरों पर, अन्यथा इनमें से किसी भी स्तर पर जनता-सरकार चले।

१. गाँव के सभी बालिग स्त्री-पुरुषों की ग्राम-सभा बने।
२. गाँव के प्रतिनिधियों को लेकर पंचायत की जन-सभा बने। प्रतिनिधियों के चुनाव में महिलाओं, हरिजनों, मुसलमानों, गरीब-वर्गों और जहाँ आदिवासी आबादी हो वहाँ आदिवासियों को उचित प्रतिनिधित्व मिले, इसका विशेष ध्यान रखा जाय। इसका यथासम्भव प्रयत्न किया जाय कि अधिक-से-अधिक प्रतिनिधि तरुण और युवा हों।

३. हर पंचायत के एक चुने हुए प्रतिनिधि या मुखिया को लेकर प्रखण्ड की जनसभा बने।

४. ग्रामसभा और जन-सभाएँ अलग-अलग कामों के लिए अवैतनिक संचालक चुनें।

जनता-सरकार का संगठन लोकराज के सिद्धान्त पर आधारित हो। महत्त्वपूर्ण फैसलों में यथासम्भव स्त्री-पुरुष, सभी वयस्क नागरिकों की हिस्सेदारी हो। जहाँ सम्भव हो, गाँव के सभी नागरिकों की ग्रामसभा बने। ग्रामसभाओं के प्रतिनिधियों की पंचायत जन-सभा बने। पुराने मुखिया जहाँ आन्दोलन में शामिल हों, वहाँ वे ही मुखिया रहें। जहाँ पुराने मुखिया आन्दोलन से अलग या उसके विरोधी हों वहाँ पंचायत जन-सभा नये मुखिया का चुनाव करे। सभी पंचायतों के मुखिया लोगों की प्रखण्ड जन-सभा बने। ग्रामसभा और जन-सभाओं के द्वारा विभिन्न कामों के लिए संचालकों का चुनाव हो।

कार्य

जनता-सरकार पहले चरण में मुख्य रूप से नीचे लिखे काम अपने हाथ में ले :

१. पुलिस थानों का बहिष्कार किया जाय। चोरी-डकैती जैसे अपराधों की रोकथाम के लिए हर गाँव में ग्राम-शांति-दल संगठित किये जायँ। आपसी विवादों या मुकदमों का फैसला परम्परागत पंच-पद्धति से किया जाय।

२. मौजूदा जनविरोधी सरकार को किसी प्रकार का कर न दिया जाय। अगर कहीं सरकारी कर्जों की वसूली हो, तो फिलहाल उनकी अदायगी भी न की जाय। अगर ग्राम-सभाएँ, पंचायत जन-सभाएँ या प्रखण्ड जन-सभाएँ सर्वानुमति से फैसला करें, तो सरकारी करों की अदायगी जनता-सरकारों को की जाय,

जिससे वह जनता की सेवा कर सके। जहाँ कहीं भी ऐसी व्यवस्था हो वहाँ मासिक आय-व्यय का ब्योरा प्रकाशित करना अनिवार्य हो। जहाँ कर न लिया जाय वहाँ जनता-सरकार स्वैच्छिक दान से प्राप्त धन से अपना काम चलाये। इसका हिसाब ग्रामसभा एवं जनसभा में पेश हो। हर हालत में बल-प्रयोग न करे।

३. जनता-सरकार उचित मूल्य पर जीवनोपयोगी वस्तुओं के समुचित और न्यायपूर्ण वितरण की व्यवस्था करे। इसमें गरीबों के साथ पूरी तरह न्याय हो, इसका विशेष ध्यान रखा जाय।

४. बाढ़ या सूखा जैसी प्राकृतिक विपत्तियों से पीड़ित क्षेत्रों में जनता-सरकार राहत-कार्य अपने हाथ में ले और प्रशासन द्वारा किये जानेवाले राहत-कार्य का नियंत्रण करे।

५. गाँव-गाँव में ऐसा वातावरण बनाया जाय कि हरिजनों के साथ किसी प्रकार का अन्याय न हो और उनके साथ समता का व्यवहार किया जाय। अन्याय का एक रूप यह भी है कि उन्हें घरों से उजाड़ दिया जाता है। इसलिए जहाँ हरिजनों को बासगीत के परचे न मिले हों वहाँ जनता-सरकार अपनी ओर से परचे दे और किसी भी हालत में उनकी बेदखली न हो, इसके लिए गाँव में उचित व्यवस्था हो।

६. जनता-सरकार रोजगार बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्न करे। जनता की आविष्कार-बुद्धि का इस्तेमाल करके जनता-सरकार अन्य जन-सेवा के काम करे।

७. सामाजिक बहिष्कार किया जा सकता है। लेकिन किसी भी व्यक्ति को और किसी प्रकार से दण्डित या अपमानित न किया जाय।

८. सभी निर्वाचित प्रतिनिधि और संचालक अवैतनिक हों और स्वयंसेवकों के आधार पर काम करें।

जनता-विधानसभा

जनता की इस विधानसभा में न किसी पार्टी को अख्तियार होगा उम्मीदवार खड़ा करने का कि यह जनसंघ का, यह सोशलिस्ट का, यह अमुक का उम्मीदवार खड़ा किया। नहीं, आपके उम्मीदवारों को जन-छात्र-संघर्ष-समिति ने स्वीकार किया तो वे उनकी तरफ से खड़े होंगे। उनके प्रतिनिधि होकर जायेंगे। जनता उम्मीदवार खड़ा करेगी। बाजाब्ता बॅलेट बॉक्स रखा जायगा। वोट गिना जायगा। मैं समझता हूँ कि कोई विरोध में खड़ा नहीं होगा। खड़ा हो जाय तो उसकी मर्जी रहेगी। उसका भी 'बॅलेट बॉक्स' रहेगा। जिसको वोट देना होगा वह डाल देगा। लेकिन जिसे छात्र एवं जन-संघर्ष-समितियों ने नामजद किया और खड़ा किया, तो विजय निश्चित उनकी होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। अब यह बिहार की असेम्बली बैठेगी, स्पीकर का चुनाव होगा, नेता का चुनाव होगा। पार्टी कोई नहीं। एक पार्टी, संघर्ष समिति, छात्र और जन। किनको भेजना है? जवान लोगों को भेजो। नये चेहरे हों, पिछड़ी जातियों, आदिवासियों, महिलाओं, हरिजनों, मुसलमानों को भेजो। ऐसा नहीं कि हमारी सीट, हमारी सीट। ईमानदार लोगों को, गरीबों की सेवा करनेवालों को, जिन लोगों ने संघर्ष में कुछ काम किया है उनको भेजो। फिर वहाँ नेता चुने जायेंगे। वे मुख्यमन्त्री होंगे। वे अपने मन्त्रिमण्डल का चुनाव करेंगे।

देखा जायगा। जनता के सामने एक विकल्प पेश होगा कि जनता ने अपनी असेम्बली का अपना चुनाव किया है। मान लीजिये, कभी तो आज की विधानसभा का विघटन होगा। कभी तो चुनाव होगा। अगले चुनाव तक जनता की यह विधानसभा कायम रहेगी। उसके बाद इस विधानसभा के सदस्यों ने जनता की सेवा की तो ठीक। वे संघर्ष-समितियां, जिन्होंने अपने-अपने

चुनाव-क्षेत्र से चुनकर उनको भेजा है वे खबरदारी रखेंगी, पहरा रखेंगी। वे देखती रहेंगी कि जिनको हमने चुनकर भेजा है वे क्या काम करते हैं। वहाँ पटने में तो बहुत काम होगा नहीं। जनता के बीच जाकर काम करना होगा। तो जो ठीक ढंग से अमल करेंगे उनको जनता रखेगी। दूसरों को जनता कहेगी कि आप हट जाओ। इसलिए विधानसभा के चुनाव-क्षेत्र में ग्राम-पञ्चायत के स्तर तक जन और छात्र-संघर्ष-समिति बन जानी चाहिए। संघर्ष चलाने के लिए भी और चुनाव की तैयारी के लिए भी।

हमारा आन्दोलन निर्दलीय है। बिहार में विपक्षी दलों का हमें समर्थन प्राप्त है। जहाँ तक इस्तीफा देने की बात है उसमें सभी विपक्षी दल टूट गये हैं। हम इतना ही चाहते हैं कि कोई भी पार्टी और कोई भी विद्यार्थी-संगठन इस आन्दोलन पर हावी न हो। इस पर काबू न करे। इसका जो निर्दलीय चारित्र्य है वह कायम रहे, बावजूद इसके कि विभिन्न प्रकार के दल इसके अन्दर हैं।

४. मतदाता-शिक्षण

बिहार में एवं अन्य राज्यों में, जहाँ विधानसभा-भंग की माँग नहीं है, साथ-साथ हम लोग एक अभियान चलायेंगे कि चुनाव में क्या करना है। जनता को तैयार करेंगे, उनको संगठित करेंगे। उनमें जागरण तो है, उनको संगठित करने की जरूरत है। हम इसकी कोशिश करेंगे। पोलिंग बूथ और चुनाव-क्षेत्र में कोई बेईमानी न हो, यह नौजवान करेंगे। और अगर बेईमानी हो रही हो तो वोटिंग होने नहीं देंगे। ऐसी परिस्थिति कर देंगे कि वहाँ वोट पड़े ही नहीं या फिर मतदान स्थगित हो जाय। इस तरह की शक्ति पैदा करनी होगी। चुनाव में किस तरह वोट

देना चाहिए, किसको देना चाहिए, यह सब आइडियालॉजी की बातें हैं। लेकिन इस वक्त सबसे कीमती आइडियालॉजी ईमानदारी है। उसको वोट दो, जो ईमानदार हो। अगर तुम्हारी जात-बिरादरी का न भी हो तो उसे वोट दो। गरीब की सेवा करता है उसे वोट दो। इस तरह प्रचार करना होगा।

५. अन्याय के विरुद्ध संघर्ष

विधानसभा भंग हुई (या जिन राज्यों में विधानसभा भंग की माँग न हो वहाँ) तो भी जो संघर्ष-समितियाँ छात्रों की या जनता की बन गयी हैं या बन रही हैं, वे काम करती रहेंगी। उनका काम केवल शासन से संघर्ष करना नहीं है, बल्कि उनका काम तो समाज के हर अन्याय और अनीति के विरुद्ध संघर्ष करने का होगा और इस प्रकार से इन समितियों के लिए बराबर एक महत्त्वपूर्ण कार्य रहेगा। गाँव में छोटे अफसरों या कर्मचारियों की—चाहे वे पुलिस के हों या अन्य किसी प्रकार के—जो घूसखोरी चलती है, भ्रष्टाचार है, बेईमानी है, चोरबाजारी है, उनके खिलाफ तो संघर्ष रहेगा ही। साथ-साथ जिन बड़े किसानों ने बेनामी या फर्जी बन्दोबस्तियाँ की हैं, उनका भी विरोध ये समितियाँ करेंगी और उनको दुरुस्त करने के लिए संघर्ष करेंगी। गाँव में तरह-तरह के अन्याय होते हैं, जैसे हरिजनों के खिलाफ होते हैं। ये समितियाँ उन अन्यायों को भी रोकेंगी। जमीन-सुधार के कानून हैं, खेतिहर मजदूरों को कम-से-कम कितनी मजदूरी मिले इसके कानून हैं, हरिजनों के कल्याण के लिए कानून हैं। इन सबका कार्यान्वयन हो, यह ये समितियाँ देखेंगी। वह काम, जिसे सरकार कराने में असफल रही उसके कार्यान्वयन की ये कोशिशें करेंगी। इस प्रकार से जनता की या छात्रों की ये निर्दलीय संघर्ष-समितियाँ स्थायी रूप से कायम रहेंगी और केवल

लोकतन्त्र के लिए ही नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, नैतिक क्रान्ति के लिए अथवा सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए एक बहुत ही महत्त्व-पूर्ण कार्य करेंगी।

कुछ गलतफहमियाँ

इस तहरीक (आन्दोलन) में ज्यादातर छात्र आये हैं या आम शहरी या गाँव के लोग। वे किसी पार्टी से सरोकार नहीं रखते हैं। सर्वोदयवाले किसी पार्टी के नहीं, मैं किसी पार्टी का नहीं और इस आन्दोलन की असल ताकत तो ये ही लोग हैं, जो किसी पार्टी से सरोकार नहीं रखते हैं। नॉन-पार्टी हैं। मैं उम्मीद करता हूँ, बल्कि मुझे पूरा यकीन है कि कोई भी पार्टी इस तहरीक पर हावी होने या अपना रंग भरने में कामयाब नहीं हो सकती। जब तक मैं हूँ ऐसा नहीं होनेवाला है और अगर मैं न भी रहूँ तो भी ऐसा नहीं हो सकता। मुझे ऐसा लगता है कि आर० एस० एस० एवं जनसंघ के विचारों में बड़ा फर्क पड़ा है। स्वराज्य की लड़ाई के खत्म होने के समय जो आर० एस० एस० के विचार थे वे भी अब बदले हैं। वह कुछ परिस्थिति की वजह से और कुछ इसलिए भी कि जनसंघ एक राजनीतिक पार्टी है और वह यह समझती है कि यू० पी०, बिहार और देश के कुछ हिस्सों में ऐसे चुनाव-क्षेत्र हैं, जहाँ मुसलमानों के वोट बिलकुल इनके खिलाफ हों तो वह चलनेवाले नहीं। हिन्दू पार्टी के बजाय एक नेशनल पार्टी के रूप में वह आने की कोशिश कर रहे हैं। इन मामलात में अटलबिहारी बाजपेयीजी ज्यादा ब्रॉड माइंडेड (खुला दिमागवाले) मालूम पड़ते हैं। जिस तरह बंगला देश बनने के बाद मुसलमानों पर एक खास असर पड़ा है उसी तरह आर० एस० एस० के सोचने के अन्दाज पर भी काफी असर पड़ा है। और इस बात को उन्होंने समझा है कि एक मुस्लिम मुल्क

भी भारत का सच्चा दोस्त हो सकता है। वे एक बात को मानते हैं कि बंगला देश के साथ हिन्दुस्तान को मिलकर चलना है। शायद पाकिस्तान के बारे में वे कुछ और सोचते हों, लेकिन इन हालात का असर पड़ा है। जैसे-जैसे देश की राजनीति आगे बढ़ रही है उसका असर उन पर पड़ रहा है। मैं यह भी मानता हूँ कि इस तहरीक का, मेरे इसमें शामिल होने का असर इन पर पड़ा है। और राजनैतिक पार्टियों से सम्बन्धित और असम्बन्धित लोगों को साथ ले चलने की जिम्मेदारी उनकी भी है, जिनका असर पड़ता है। तो इस आन्दोलन की वजह से भी वे कुछ ब्रॉड माइंडेड हुए हैं। साथ-साथ मैं यह भी नहीं कहता कि वे सोलह आने बदल गये हैं। पुरानी बातें अभी कुछ मौजूद होंगी और कुछ दिक्कतें होती भी हैं। लेकिन वे साम्प्रदायिक नहीं होतीं। वे होती हैं कमेटी पर हावी होने की कोशिश की।

यह ठीक है कि मुख्यमंत्री बिहार में मुसलमान हुआ, अच्छी बात है। लेकिन चूँकि मुसलमान है इसलिए यह आन्दोलन है यह बिलकुल बेबुनियाद बात है। अगर कोई हिन्दू, केदार पाण्डे ही, मुख्यमंत्री होते तो तहरीक तो चलती। इसलिए मुसलमान होने की वजह से उनके खिलाफ यह आन्दोलन है, ऐसी बात हरगिज नहीं है। मिनिस्ट्री में तो हिन्दू ही अधिक हैं। विधानसभा में भी हिन्दू ही भारी बहुमत में हैं। इसलिए जो मुसलमानों को इस तरह गुमराह किया जाता है वह उनके साथ इंसाफ नहीं किया जा रहा है। इस तरह वह देश या बिहार की राजनीति को नहीं समझ पायेंगे।

बिहार-आन्दोलन की सफलता से देशव्यापी आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त होगा

मैं यह मानता हूँ कि आज यह देशव्यापी जो आन्दोलन होने-वाला है उसका यह वह स्टेज है, जो चंपारण का स्टेज था, बार-

डोली का स्टेज। अगर चम्पारण का सत्याग्रह, बारडोली का सत्याग्रह, नागपुर का झंडा-सत्याग्रह आदि ये स्थानीय सत्याग्रह सफल नहीं हुए होते तो १९३० का जो नमक-सत्याग्रह था वह देशव्यापी न बन पाता। यह असंभव था। आज का बिहार का आन्दोलन उस देशव्यापी आन्दोलन की तैयारी है। आज मेरी शक्ति मुख्यतः बिहार में ही लगनेवाली है। अन्य राज्यों के लोगों को मैं कहूँगा कि जो कुछ करना है सो उन्हींको करना है। हर प्रदेश के युवकों को अपने प्रदेश की परिस्थिति देखकर कार्यक्रम तय करना है। बिहार की नकल करने की जरूरत नहीं। हर प्रदेश की अपनी-अपनी परिस्थिति है। उस परिस्थिति में जो आन्दोलन पैदा होगा उसमें मैं थोड़ी मदद कर सकता हूँ, रास्ता दिखा सकता हूँ, सलाह दे सकता हूँ। लेकिन करना आपको ही है।

यह जन-आन्दोलन है और जैसे-जैसे आन्दोलन बढ़ेगा वैसे-वैसे रास्ता खुलेगा। नया-नया प्रोग्राम बनेगा। मैं कौन होता हूँ कह देनेवाला कि ५ वर्ष के बाद यह होगा, हुकूमत बनेगी तो उसका यह प्रोग्राम रहेगा, यह प्रोग्राम बनेगा? जनता बनायेगी। जनता को आज तो जगाया है। लेकिन इस प्रकार से जनता इस लोकतन्त्र का प्रहरी बन सके और ब्लॉक से लेकर, कर्मचारी के काम से लेकर, मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री के काम तक, सबके काम की निगरानी और लेखा-जोखा करे, उसमें ऐसी शक्ति हो। ऐसी परिस्थिति पैदा हो कि जनता जो चाहती है, उससे भिन्न कोई कर नहीं सके। यह शक्ति पैदा होनी चाहिए। केवल शासकों के लिए नहीं, बल्कि व्यापारियों के लिए, थोक व्यापारियों के लिए, खुदरा व्यापारियों के लिए, विद्यार्थियों के लिए, शिक्षकों के लिए, सबके लिए।

सम्पूर्ण क्रान्ति के कार्यक्रम : पर्वतारोहण की प्रक्रिया

पर्वत पर चढ़ते समय, नीचे खड़े हैं पर्वत के तो छोटा पर्वत है उसीका शिखर नजर आता है। उस शिखर पर हम चढ़ेंगे तो उसके पीछे जो पर्वत था, जो दीखता नहीं था, वह नजर आयेगा। ऊपर हम चढ़ते जायेंगे। इस प्रकार (सम्पूर्ण क्रान्ति) यह आरोहण की प्रक्रिया है। गुजरात के बाद बिहार की यह स्थिति बनी है। विशेष परिस्थिति के कारण बिहार में विधान-सभा-भंग की माँग सामने आयी। लेकिन देशभर के आन्दोलन के लिए यह कोई सार्वत्रिक नमूना नहीं बन सकता, न वह बनना चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह आन्दोलन केवल राजकीय भ्रष्टाचार के खिलाफ न होकर समाज-जीवन के अन्य क्षेत्रों में चलनेवाले भ्रष्टाचार के खिलाफ भी है, जैसे कि उद्योग और व्यापार में चलनेवाली काला-बाजारी, जमाखोरी इ०, शिक्षा-क्षेत्र में चलनेवाला भ्रष्टाचार आदि-आदि। सबसे महत्त्व की बात तो यह ध्यान में रखने की है कि इस आन्दोलन के दूरगामी उद्देश्य भी हैं और वे हैं—बुनियादी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक परिवर्तन। बिहार का संघर्ष इतिहास की कोई एक क्षणिक चमकवाली घटना नहीं है, बल्कि वह तो क्रांतिकारी संघर्ष की सतत बहनेवाली धारा है। इसलिए मैंने उसे संपूर्ण क्रांति के लिए चलनेवाला संघर्ष कहा है। इस क्रान्ति-कारी प्रक्रिया में जनता की सच्ची सरकारों की तथा राजनैतिक दलों की अपनी भूमिका अवश्य है; परन्तु इस आन्दोलन की मुख्य शक्ति होगी युवकों और लोगों द्वारा चलाये जानेवाले संघर्षात्मक एवं रचनात्मक कार्यक्रम। मैं अच्छी तरह जागरूक हूँ कि ऐसी क्रान्ति देश से अलग करके किसी एकाकी राज्य में संभव नहीं है।

इसी कारण से अन्य राज्यों में भी इस आंदोलन के विस्तार की आवश्यकता है।

संपूर्ण क्रांति के इस आंदोलन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्वरूप की रूपरेखा मोटे तौर पर महात्मा गांधी की विचारधारा के अनुरूप होगी। मतलब, इसमें कृषि-विकास और भूमि के न्याय्य वितरण पर जोर रहेगा। जोर होगा कृषि में सुयोग्य तकनीक के इस्तेमाल पर—जैसे कि सुधरे हुए श्रम-प्रधान कृषि-औजार और गोबर-गैस-प्लांट सरीखे वैज्ञानिक साधन। घरेलू और ग्रामीण उद्योगों के विकास को और लघु उद्योगों के व्यापकतम प्रसार को तथा क्षेत्रीय योजना और विकास के कार्यक्रमों को प्रधानता दी जायगी। राजनैतिक और प्रशासकीय विकेंद्रीकरण की तरफ विशेष ध्यान होगा। वर्तमान ग्राम-पंचायत, पंचायत-समिति और जिला परिषद् की शक्ल में आज जो दिखावटी और बनावटी विकेंद्रीकरण नजर आ रहा है उससे वह सर्वथा भिन्न और वास्तविक होगा। शिक्षा में बुनियादी सुधार होंगे, जिससे कि उच्चवर्ग की प्रभुता बनाये रखनेवाला वर्तमान शिक्षा का चरित्र नष्ट होगा और छात्रों के जीवन की समस्याओं से एवं राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रश्नों से शिक्षा का सीधा और जीवंत सम्बन्ध होगा। ऊँच-नीच का भेदभाव पालनेवाली, हिंदू-समाज की जाति-प्रथा का उन्मूलन होगा। आर्थिक विषमता को भी इस तरह से समाप्त करना होगा कि जिससे उत्पादन-वृद्धि में बाधा न पहुँचे और वर्ग-भेदों को नष्ट किया जाय।

इसलिए आगे हमें कहाँ जाना है, लक्ष्य क्या है हमारे सामने, बिलकुल स्पष्ट है। लेकिन आज का जो कदम है उसके बाद

कौन-सा कदम होगा, वह मैंने सोचकर नहीं रखा है। उस कदम को लेने के बाद क्या परिणाम होता है, किधर हम पहुँचते हैं, कहाँ पहुँचते हैं, उस पर से दूसरा कदम आपसे-आप निकलेगा। मुझे सूझेगा। दूसरों को सूझेगा। ●



६. मेरे तरुण मित्रों से

दुनिया के कई हिस्सों में अपने-अपने देश का भाग्य बदलने के लिए छात्रों ने निर्णायक भूमिका अदा की है। थाइलैण्ड का अद्यतन उदाहरण हमारे सम्मुख है। समय आ गया है कि तरुण शक्ति राष्ट्रीय मञ्च पर आगे आये और पैसा, असत्य एवं पाशविक बल के ऊपर जनशक्ति की प्राथमिकता और स्थापना करने में तथा जनता की जीत कराने में कटिबद्ध हो जाय।

युवकों में तेज है, उनके दिलों में आग है, जवानी का जोश है, कुर्बानी करने की तैयारी है, उन पर जिम्मेवारियाँ भी कम हैं और गृहस्थी चलाना, बच्चों का भरण-पोषण करना ऐसी जिम्मेदारियाँ जो बुजुर्गों पर हैं, युवकों के ऊपर नहीं हैं। वे आगे बढ़ेंगे।

आनेवाली क्रान्ति के अगुआ छात्र और युवा

मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि समाज में आगे आनेवाली जो क्रान्ति होगी वह निर्दलीय एवं शान्तिमय होगी और उसके अगुआ छात्र रहेंगे, युवा रहेंगे। छात्र-शक्ति और युवा-शक्ति के पीछे जन-शक्ति होगी और उसके साथ-साथ अगर नैतिक शक्ति जुड़ जायगी तो फिर वह अजेय हो जायगी। ये तीन शक्तियाँ–ब्रह्मा, विष्णु, महेश—जुड़ जायँ, फिर तो इनका कोई मुकाबला नहीं कर सकेगा, इस निर्णय पर मैं पहुँचा हूँ।

भारत की यह युवा-शक्ति सोयी हुई है ऐसा तो नहीं कह सकते, लेकिन वह अधिकांश कॉलेज, युनिवर्सिटी या कुछ स्थानीय छोटे-मोटे मसलों में लगी हुई है, या भिन्न-भिन्न पार्टियों के स्वयंसेवक बनकर उनके झण्डे उठानेवाली बनकर रह गयी है। उन राजनीतिक पार्टियों में जिस मात्रा में गतिशीलता, क्रान्तिकारिता या नवनिर्माण का विचार रहा, उस अनुपात में युवक आगे बढ़े। इस प्रकार मैंने देखा कि देश की युवा-शक्ति आज छोटे-छोटे प्रश्नों में उलझी हुई है या विभिन्न पार्टियों में बँटी हुई है। इसी कारण युवकों की एक सम्मिलित शक्ति नहीं बन पायी। इसी वजह से मैंने आह्वान किया: 'यूथ फॉर डेमोक्रेसी' (लोकतन्त्र के लिए युवा-शक्ति)। अन्य कहीं आशा का स्थान नहीं था। मैं करता भी क्या, मुझसे रहा नहीं गया, मैंने आह्वान किया और मुझे खुशी है कि युवकों ने उसका अच्छा उत्तर दिया।

क्रान्ति के लिए एक वर्ष दो

फिर गुजरात में छात्रों ने पहल की और राजनीतिक भ्रष्टाचार आदि समस्याओं के खिलाफ आन्दोलन चलाया। बाद में एक कदम आगे बढ़कर बिहार में छात्रों ने आन्दोलन छेड़ा। तो

मैंने इन छात्रों से कहा कि, आपने लड़ाई छेड़ी है और लड़ाई छेड़कर आप कॉलेज में बैठियेगा, और फिर परीक्षाएँ दीजियेगा ? फिर लड़ाई कौन लड़ेगा ? अगर लड़ाई लड़नी है तो छात्रों की लड़ाई छात्र ही लड़ेंगे। इसके सिपाही मिलेंगे कहाँ से ? इतना बड़ा आन्दोलन है, इतनी बड़ी क्रान्ति के ये ही सिपाही हैं, ये अगर पढ़ेंगे तो फिर कौन क्रान्ति करेगा ? सेना घर में बैठी रहेगी, होस्टलों में बैठी रहेगी, क्लास में बैठी रहेगी, तो लड़ेगा कौन ? परीक्षाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं मैं मानता हूँ, किन्तु इतिहास के कुछ मोड़ों पर आकर परीक्षाओं और डिग्रियों से दूसरी चीजें महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। सभी छात्र कॉलेज छोड़-कर एक वर्ष के लिए कूद पड़ें ! बापू ने तो एक वर्ष के लिए नहीं, हमेशा के लिए कॉलेज छोड़ने का आह्वान किया था। और यदि यह आन्दोलन असफल हुआ तो भी इसमें हिस्सा लेनेवाले युवकों का अनोखा, अमूल्य शिक्षण होगा। सिर्फ किताबों, भाषणों और परीक्षाओं से ही ज्ञान नहीं होता। १९२०-२१ में हम असहयोग करनेवाले छात्रों ने उस जमाने की रोमांचकारी और युग-निर्माणकारी घटनाओं से जुड़कर जो ज्ञान प्राप्त किया, वह असंख्य पुस्तकों और कक्षाओं के भाषणों से मिलना सम्भव नहीं था। यदि मैं अपने अनुभव की बात बताऊँ तो कहूँगा कि शिक्षा का अर्थ यदि चारित्र्य एवं व्यक्तित्व का सर्जन है तो असह-योग के जमाने में मुझे सबसे अमूल्य शिक्षा मिली है। मैं आज जो कुछ हूँ उस सर्जनशील अनुभव की उपज हूँ।

जनता का साथ अनिवार्य है

अब अभिभावक लोग कहते हैं कि जयप्रकाश नारायण की सब बातें तो ठीक हैं, लेकिन ये लड़कों को कॉलेजों से निकलने के लिए क्यों कहते हैं ? एक बरस कॉलेज न जाओ इसके क्या माने

हैं ? लड़के का 'कैरियर' खराब हो जायगा ! अरे, क्या कैरियर खराब हो जायगा ? आज कौन सी शिक्षा मिलती है ? वह शिक्षा लेकर के ही वह क्या करता है ? आप जिस चक्की में पिस रहे हो उससे निकलने का रास्ता इन लोगों ने खोजा और आगे बढ़ रहे हैं तो पीछे से आप उनकी टाँगें खींच रहे हो। खुद तो किया नहीं कुछ और आपके बेटों ने, आपके पोतों ने, कुछ किया तो उन्हें पीछे खींच रहे हो !

आप सब नागरिकों से मैं कह रहा हूँ कि जो आपकी तकलीफें हैं, जो आपके दु:ख हैं, जो आपकी मुसीबतें हैं, जिनके खिलाफ आप खुद लड़ाई नहीं लड़ पा रहे हैं इस वक्त—चूँकि अपने काम-काज, अपनी गृहस्थी में बँधे हुए हैं, आपके ऊपर जिम्मेदारियाँ हैं—आपके लड़के उन्हीं बातों के लिए लड़ रहे हैं। क्या भ्रष्टाचार के शिकार आप नहीं हैं, आप महँगाई की चक्की में नहीं पिस रहे हैं ? आपका बेटा, बी० ए०, एम० ए० पास करके आता है, नौकरी के लिए दर-दर की ठोकरें खाता है और नौकरी नहीं मिलती है, आता है घर में, तो आपके सिर पर क्या बोझ नहीं बनता है ? ऐसी निकम्मी शिक्षा है। यह बेरोजगारी है, इसके आप भी तो शिकार हैं ? बगैर त्याग के, बगैर बलिदान के, बगैर कुर्बानी के कैसे बदल जायगा समाज ? तो और कौन करेगा कुर्बानी, और कौन करेगा बलिदान, जब इस देश के नौजवान नहीं करेंगे और आगे नहीं बढ़ेंगे ? अत: लड़कों के पिता-माताओं से यह निवेदन करता हूँ कि यह असाधारण समय है। भारत का इतिहास एक नया मोड़ ले रहा है, पलट रहा है, नया अध्याय इसमें अब लिखा जा रहा है, यह समझिये आप। दुनिया की कोई भी क्रान्ति केवल युवा-शक्ति के द्वारा ही हुई हो ऐसा नहीं है। जनता का साथ अनिवार्य है।

असहयोग-आन्दोलन के समय १९२१ में मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब तशरीफ ले आये थे पटने में, और उनका एक

भाषण हुआ। उनकी जिह्वा पर तो सरस्वती बसती थीं। मौलाना ने अपनी बातों के सिलसिले में एक बात यह कही थी कि लोग कहते हैं कि आजादी की शिक्षा देनेवाले विद्यालय जब तक न बनें, गांधीजी ऐसे विद्यालय प्रस्तुत न करें, तब तक गुलामी की शिक्षा देनेवाले विद्यालयों को मत छोड़ो। मौलाना ने कहा कि ये तो बड़े नादान, नासमझ लोग हैं। कोई जहर खा रहा हो, उनके शब्द थे, संखिया की डली कोई चूस रहा हो—संखिया जो जहर है—और उसको कोई कहे कि अरे, जहर खा रहे हो, यह संखिया है, फेंक दो, मुँह से निकाल दो इसको, तो वह आदमी कहे, नहीं, जब तक आप अमृत का प्याला नहीं लाकर दोगे तब तक यह संखिया की डली नहीं छोड़ेंगे, वैसी बात है यह। बस, उस दिन के बाद दूसरे दिन सुबह पटना की गंगा में आग लग गयी।

देश की नब्ज पहचानिये

विद्यार्थियों में कुछ जान है। वही आशा है इस देश की। लोग दोष देते हैं कि (आन्दोलन ने) इम्तिहान बन्द करा दिये। अरे बाबा, जातीयता के झगड़ों से कॉलेज बन्द हो जायँ तो हो जायँ, लेकिन कोई क्रान्ति के अन्दर बन्द हो तो वह बड़ी खराब बात हो गयी? तो क्रांति भी होगी, क्रांति का हम फल भी चाहेंगे और कोई बलिदान नहीं करेंगे? सरदार भगतसिंह ने सौदा किया था? अपनी जान की बाजी लगा दी थी। और ये बंगाल के सारे क्रांतिकारी, जो फाँसी पर लटकाये गये, और देश के क्रांतिकारी लोग? अहिंसक क्रांतिकारी तो जेलों में कैद रहे। वर्षों तक लाठियाँ खायीं, गोलियों के निशाना हुए, जमीन की कुर्की हुई। किस दृष्टि से आप इसको देखते हैं? आज जो देश में हो रहा है आप पहचान नहीं रहे हैं, आपकी आँखें बन्द हैं? पहचानते नहीं हैं देश की नब्ज आप कि क्या हो रहा है देश में?

निर्दलीय और निष्पक्ष रहिये

विद्यार्थी सब तरह की राजनीतिक विचारधाराओं का गहराई से अध्ययन करें और अपनी पसन्दगी से काम करें, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु युवकों की विधायक, निष्पक्ष शक्ति का उदय, राजनीतिक दलों की सदस्यता और उनके हाथ का खिलौना बनने से कदापि सम्भव नहीं है। छात्रों का संगठन, आन्दोलन और संघर्ष दलों के नेतृत्व में चले यह मुझे मान्य नहीं है, और यह बात छात्रों को भी मान्य नहीं होनी चाहिए। छात्रों को पूर्ण रूप से निर्दलीय रहना चाहिए और उसके अनुरूप ही बरतना चाहिए। सबसे सलाह लो, निर्णय आप करो। यह सीखो। नया नेतृत्व इस देश में पैदा होना चाहिए और युवकों में से पैदा होना चाहिए। ऐसा नेतृत्व पैदा होना चाहिए कि जो अपने लिए कुछ न चाहता हो। कुछ युवक हैं, नेता बनकर कुछ बन जाना चाहते हैं, कहीं पहुँच जाना चाहते हैं, कुर्सी पर पहुँच जाना चाहते हैं, कोई टिकट ले लेना चाहते हैं। इस तरुण-आन्दोलन में, इस क्रान्तिकारी आन्दोलन में उनका कोई स्थान नहीं है। वे स्वार्थी लोग हैं। उनसे कोई काम नहीं होनेवाला है।

अनुशासित सैनिक बनिये

एक और बात आपको कहना चाहता हूँ, जो आपको सुनने में अच्छी नहीं लगेगी, शायद कड़वी लगेगी। अगर आप कोई लड़ाई लड़ना चाहते हों तो इस भीड़ के चलते वह लड़ाई कभी लड़ी नहीं जा सकती। कोई अगर सेना होती है लड़ाई लड़नेवाली तो उसमें कुछ अनुशासन होता है, इस प्रकार की भीड़ जाकर लड़े सेना से तो एकदम तितर-बितर हो जाय भीड़, और पैर उखड़ जायँ उस भीड़ के। भारत के इतिहास में कई बार यह घटना घटी। मुट्ठीभर विदेशी आये और हमारा संगठन अच्छा नहीं था, हमारे

हथियार अच्छे नहीं थे, हमारे राजा हाथियों पर चढ़कर लड़ाई लड़ते थे और उधर से आनेवाले घोड़े पर लड़ाई लड़ते थे। और कितनी बातें होतीं, जिनके कारण से मुट्ठीभर लोगों ने हमें परास्त किया और हमारे देश पर राज्य किया। अब देखिये न इस सभा-मंच पर छात्रों का हाल क्या है!

आप सब बेईमानी करोगे और दूसरों से कहोगे कि तुम सच्चे बनो तब तो नहीं चलेगा। विद्यार्थी इम्तिहान में चोरी करेंगे, पैरवी करके नम्बर बढ़वायेंगे तो क्या शक्ति होगी? लड़कियों के साथ छेड़खानी करेंगे तो क्या शक्ति होगी? विद्यार्थियों का इनसे ह्रास हो रहा है। मैं तो इनकी शक्ति ऐसी बनाना चाहता हूँ कि इम्तिहान हो रहा है तो छात्र-संघर्ष-समिति के लोग जाकर कहें कि निरीक्षक लोग हट जायँ। किसीके निरीक्षण की जरूरत नहीं। छात्र निरीक्षण करेंगे। हम देखते हैं कि कौन चोरी करता है, कौन छूरा लेकर यहाँ आया है। तब न भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई लड़ने का अधिकार मिलेगा? तब न आप उसके योग्य बनेंगे?

अपने चरित्र की कमजोरियाँ

आज के अखबारों में देखा, गलत है या सही है मैं नहीं कह सकता हूँ, कि लखनऊ स्टूडेण्ट यूनियन की तरफ से, उनके विद्यार्थियों की तरफ से एक जुलूस चला गया पायोनियर के दफ्तर में और कहा कि आग लगा देंगे तुम्हारे दफ्तर में। हमारे खिलाफ ऐसी बातें क्यों छापते हो? खबर छपी है, पढ़ा है न आपने? विद्यार्थियों ने या विद्यार्थियों जैसे दिखनेवाले लोगों ने बुशशर्ट पहन लिया, चुस्त पतलून पहन लिया और विद्यार्थी बन गये, कुछ नौजवानी होनी चाहिए चेहरे पर, बाल-वाल कुछ लम्बे हों तो और भी अच्छा है और जाकर के लोगों से कहा, 'इतना पैसा

देना पड़ेगा।' 'नहीं साहब, इतना नहीं दे सकते', तो धमकी ! अब आप छाती पर हाथ रखकर बतलाइये कि यह करप्शन नहीं तो क्या है ? आपमें और राजनीतिक पार्टियों के लोगों में फिर क्या फर्क हुआ ? फिर सत्ताधारियों में क्या फर्क हुआ ? गला दबा के रुपया वसूला जाता है ? ये सब कमजोरियाँ हैं, ये चरित्र की कमजोरियाँ हैं। हम लोग भी जवान रहे हैं, आजादी की लड़ाई लड़ी है, ऐसा मानस तो हमारा नहीं था। तो संघर्ष करने के लिए, और इन चीजों से संघर्ष करने के लिए आप सबको कुछ सोचना पड़ेगा।

अपने आचरण को भी कसौटी पर रखिये

एक बात मैं छात्रों से विशेष रूप से कहना चाहता हूँ। चूँकि यह सारा आन्दोलन अन्य माँगों के साथ ही भ्रष्टाचार को लेकर चला है, इसलिए इस आन्दोलन में भाग लेनेवाले छात्रों को अपने आचरण को भी कसौटी पर रखना होगा और तभी उनका आम जनता पर असर हो सकेगा। आये दिन की बात है कि विद्यार्थी परीक्षा में नकल करते पकड़े जाते हैं और पकड़नेवाले शिक्षकों पर छूरा निकाल लेते हैं। परीक्षा में असफल हो जाने पर या कम अंक प्राप्त होने पर शिक्षकों से गलत तरीकों से नम्बर बढ़वाते हैं और उच्च श्रेणी प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। जरा-जरा-सी बात पर ये ही विद्यार्थी आग लगा देते हैं और जनता को नुकसान पहुँचाते हैं। अपने यूनियन का हम हिसाब नहीं रख रहे हैं। अपनी यूनियन के पैसे हम खा गये हैं। जो हिसाब माँगता है उसको पिटवा देते हैं। रास्ते में कहीं पकड़कर पिटवा दिया—'किसकी हिम्मत होती है हमसे हिसाब माँगने की ?' ऐसा भी हो रहा है आज। यह सब रवैया छोड़ना होगा। इस प्रकार के और भी आचरण हैं जो सदाचार में तो नहीं ही आते, इनकी

गिनती भ्रष्टाचार में ही होगी। अगर ऐसे ही विद्यार्थी भ्रष्टाचार के खिलाफ आन्दोलन चलायेंगे तो उसका असर नहीं होगा। मेरे कहने का यह मतलब कदापि नहीं कि सारे के सारे विद्यार्थी सन्त हो जायँ। पर एक साधारण सदाचार की जो अपेक्षा एक विद्यार्थी से की जा सकती है, उसे आन्दोलन में भाग लेनेवाला हर छात्र पूरा करे। मैं यह भी नहीं कहता कि सभी विद्यार्थी उपर्युक्त प्रकार के आचरण के अपराधी हैं। ऐसे विद्यार्थियों की संख्या अवश्य थोड़ी है, परन्तु वे सभी विद्यार्थियों को बदनाम करते हैं और उनकी नेतागिरी भी करने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोगों से अपने को तथा अपने संगठन को अलग रखना होगा। वैसे ही जोश के साथ-साथ आपमें होश भी चाहिए। होश के बगैर कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती है।

चरित्र-निर्माण हो रहा है

सत्याग्रही होकर तो कोई पैदा नहीं हुआ। गांधीजी ने मिट्टी से बहादुर पैदा किये। मैं तो गांधी नहीं हूँ, लेकिन जमाना सबको अब गांधी बनने को मजबूर कर रहा है। छोटे-छोटे बच्चे, हमारे लड़के, गांधी की बात कर रहे हैं, गांधी बन रहे हैं। मैं देख रहा हूँ कि इन नवयुवकों के चरित्र का निर्माण हो रहा है इस बिहार-आन्दोलन में।

मैं मानता हूँ कि स्वराज्य की लड़ाई के बाद सबसे महत्त्व का जो आज का कार्य (यह आन्दोलन) हो रहा है देश में, इसका सारा श्रेय छात्रों का है। आह्वान के रूप में थोड़ा-बहुत मुझे श्रेय दिया जाता है। काम तो उनका किया हुआ है। यह सबसे महत्त्व का काम है और यह सफल होगा तो नया भारत बनेगा। इसमें हमें कोई शक नहीं है। आजादी की लड़ाई के हम सिपाहियों ने जो सपना देखा था, २८ वर्ष के बाद भी वह भारत नजर नहीं आ रहा

है, वह भारत उसमें से पैदा होगा। महात्मा गांधी ने जो क्रान्तिकारी काम शुरू किया था उस अधूरी क्रान्ति को पूरा करने के लिए आज यह दूसरी क्रान्ति हो रही है।

इस अभिनव क्रान्ति के आह्वान को कौन सुनेगा ? कौन आगे कदम बढ़ायेगा ? भारत का तरुण नहीं तो कौन यह जिम्मेदारी निभायेगा ? इसके सैनिक और सेनापति तरुण ही हो सकते हैं। इस सांस्कृतिक क्रान्ति के बिना भारत का और भारतीयता का बचना दुष्कर प्रतीत हो रहा है। यह मानवीय क्रान्ति होगी—आन्तरिक क्रान्ति होगी—ऐसी क्रान्ति, जिसमें भारत का अध्यात्म व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में उतर जायगा।

कोई भी क्रान्ति एक दिन में नहीं होती। विध्वंस एक दिन में हो सकता है, नव-निर्माण नहीं। इसलिए हमारी यह अभिनव क्रान्ति आरोहण की एक प्रक्रिया होगी। इस कठिन चढ़ाई में तरुणों को आगे आना होगा।

तिलक लगाने तुम्हें जवानो क्रान्ति द्वार पर आयी है !

६० करोड़ की आबादीवाले इस देश में, इस काम के लिए क्या अब कुछ हजार भाई-बहन भी ऐसे नहीं निकलेंगे, जो इतने निःस्वार्थ, इतने साहसी और इतने दूरदर्शी हों कि अपने-आपको इस ऐतिहासिक आन्दोलन में खपा दें ? नवयुवक अपना हृदय टटोलें। क्या वे आराम की सुखद जिन्दगी ही जीना चाहते हैं ? मुझे पूर्ण आशा है कि इस देश में ऐसे काफी तरुण-तरुणियाँ हैं, जो एक उदात्त ध्येय के लिए कष्टमय और संकटमय जीवन का आलिंगन करेंगे।

“अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ आजादी की लड़ाई के समय सन् १९२९ में रावी नदी के तट पर राष्ट्र ने पूर्ण स्वराज्य का, अर्थात् देश के निम्नतम व्यक्ति से प्रारम्भ करके सम्पूर्ण समाज के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक उत्थान का संकल्प लिया था। गांधीजी के सपने का वह स्वराज्य अभी तक अधूरा है। स्वतन्त्रता को जन-जन के जीवन में उतारने का काम अभी बाकी है। स्वराज्य का पूर्वार्ध पूरा हुआ था अंग्रेजी राज्य के अंत से, उत्तरार्ध पूरा होगा समता की स्थापना और गरीबी के अन्त से तथा शोषण और दमन की समाप्ति से। हमारा आन्दोलन इसी के लिए है। हम यह संकल्प करते हैं कि इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूरी शक्ति से काम करेंगे।”



मूल्य : दो रुपया